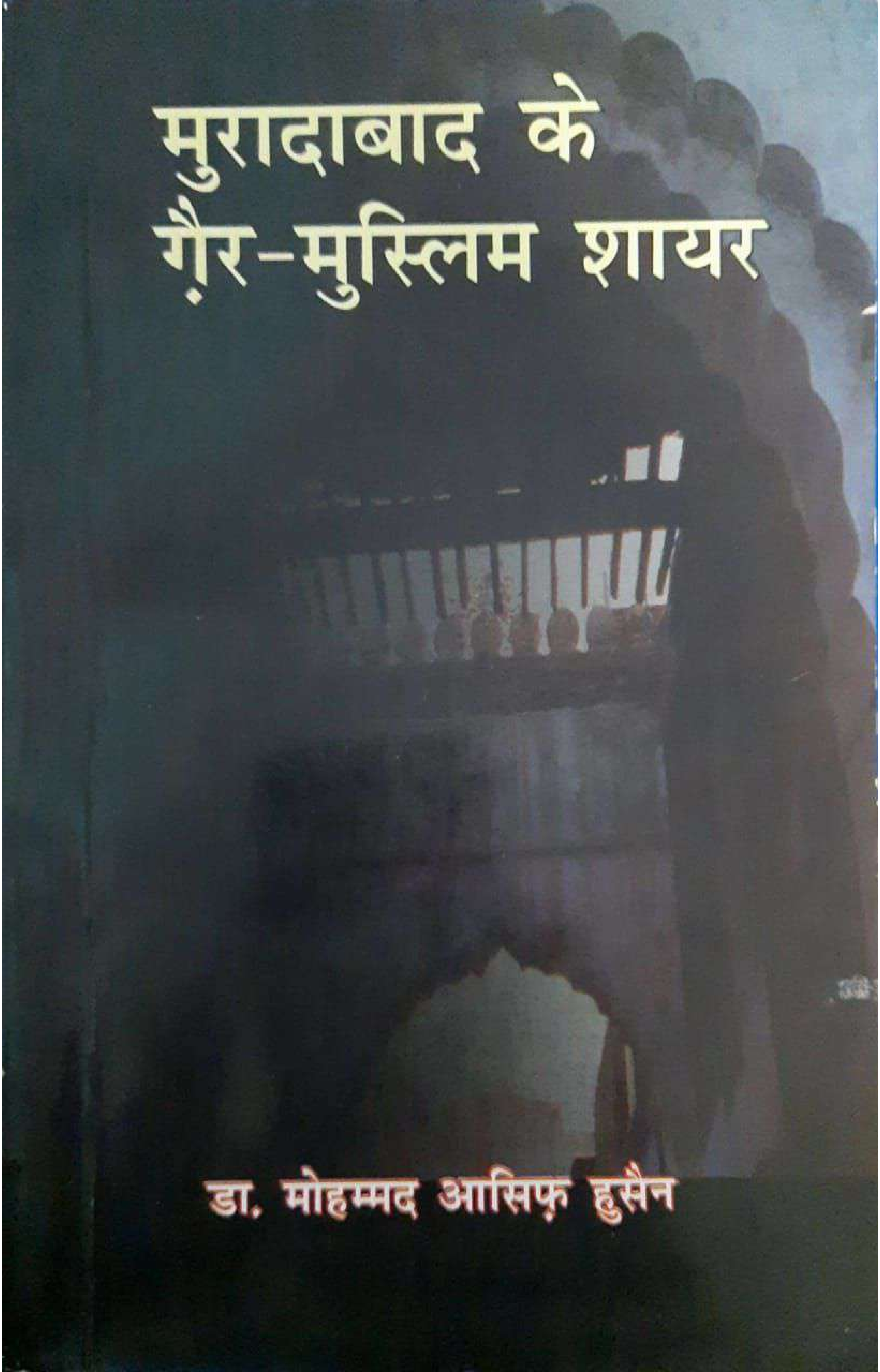


मुरादाबाद के ग़ैर-मुस्लिम शायर

डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन

मुरादाबाद के ग़ैर-मुस्लिम शायर

डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन

मुरादाबाद के
ग़ैर-मुस्लिम शायर

डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन

गुंजन प्रकाशन, मुरादाबाद (उ.प्र.)

ISBN : 978-93-80753-33-1

कृति	:	**मुरादाबाद के ग़ैर-मुस्लिम शायर**
लेखक	:	**डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन**
		टेस्टी डेयरी, दीवान का बाज़ार, मुरादाबाद-244001
		मोबाइल : 84105-44252
		email : masifh86@gmail.com
आवरण चित्र	:	गूगल से साभार
कंप्यूटर टाइपिंग	:	**मेट्स कंप्यूटर ग्राफिक्स**
		डिप्टीगंज, मुरादाबाद-244001
मुद्रक	:	**सिंह प्रिंटर्स, मुरादाबाद**
संस्करण	:	प्रथम, 2016
मूल्य	:	200/-
प्रकाशक	:	**गुंजन प्रकाशन**
		सी-130, हिमगिरि कालोनी, काँठ रोड, मुरादाबाद-244001
		मोबाइल : 99273-76877, 98083-15744
		email : kknaaz1@gmail.com

MORADABAD KE GHAIR MUSLIM SHAYAR

BY

DR. MOH. ASIF HUSAIN

Rs. 200/-

समर्पण

●

मातृभूमि हिंदुस्तान
की सभ्यता एवं संस्कृति के नाम,
जिसके साये में अनेकता में एकता,
सहिष्णुता और राष्ट्रीय एकता की पहचान
उर्दू ने जन्म लिया।

●

डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन

रहता सुख़न से नाम क़यामत तलक है ‘ज़ौक़’
औलाद से रहे यही दो पुश्त, चार पुश्त

नेक ख़्वाहिशात

– मंसूर 'उस्मानी'

ज़बान का मज़हब से कोई तअल्लुक़ नहीं होता, न ही ज़बानें किसी मज़हब की पाबन्द या उसकी ताबेअ होती हैं। अलबत्ता मज़हबों को ज़बान की ज़रूरत होती है अपनी तरसील के लिए। लेकिन बदक़िस्मती कि हमारे मुल्क की बदचलन सियासत ने वतन के बंटवारे के बाद ज़बानों को भी तक़सीम करने की नाकाम कोशिश की। यानी यह प्रोपेगेंडा किया गया कि हिन्दी हिन्दुओं और उर्दू मुसलमानों की ज़बान है। अपने नापाक इरादों की बेल मंढ़े चढ़ाने के लिए हज़ार सियासी हथकंडे भी अपनाये गये। इस मज़मूम कोशिश, साज़िश और हथकंड़ों को नाकाम किया हमारे शायरों और अदीबों ने। हमारे अदबी गहवारे को देखिए तो पाइयेगा कि हर दौर में हज़ारों अदीबों और शायरों ने मज़हबी लिहाज़ बग़ैर हिन्दी और उर्दू में अपने फ़िक्रो–फ़न के जौहर दिखाकर यह साबित कर दिया कि ज़बानें ज़िन्दा क़ौम की पहचान और मुल्क व वतन की शान होती हैं। लिहाज़ा हिन्दी हो या उर्दू, दोनों का रिश्ता हिंदुस्तान से है, यहाँ के अवाम से है, कोई ज़बान किसी ख़ास फ़िरक़े की नहीं, पूरे हिंदुस्तान की ज़बान है। ख़ासतौर पर उर्दू ज़बान के बारे में पूरे यक़ीन के साथ कहा जा सकता है कि यह ज़बान अपनी पैदाइश से लेकर अपनी मौजूदा शक्ल तक हमारे अज़ीम मुल्क हिंदुस्तान की तहज़ीबी और सक़ाफ़ती ख़ुशबू से मालामाल है।

हमारी अदबी तारीख़ गवाह है कि जिस तरह बेशुमार मुसलमानों ने हिन्दी और संस्कृत में अपने फ़न के कमाल का मज़ाहिरा किया उसी तरह ला–तादाद हिन्दुओं ने भी उर्दू और फ़ारसी के ख़ज़ाने को हर दौर में मालामाल किया है।

प्रिय डॉ. मुहम्मद आसिफ़ हुसैन की यह किताब इसी अदबी ख़ज़ाने में मुरादाबाद के ग़ैर मुस्लिम अदीबों और शायरों की हिस्सेदारी मंज़रे–आम पर लाने की एक कामयाब कोशिश है।

उन्होंने पहली बार यह काम किया है कि मुरादाबाद के बेशतर नये-पुराने अदबी चिराग़ों को किताबी शक्ल दी है। ज़बान की मौजूदा रविश और समाज के तेज़ी से बदलते हुए मंज़रनामे को देखते हुए आसिफ़ साहब ने भी ब-उजलत यह ख़िदमत अंजाम दी है, इस उजलत में मुमकिन है कुछ लोग छूट गये हों जिनकी ख़बर मिलते ही यक़ीनन इज़ाफ़े के साथ इस किताब का दूसरा संस्करण भी प्रकाशित करेंगे। इनकी बेलौस तसनीफ़ी, तालीफ़ी और तहक़ीक़ी सरगर्मियों को देखते हुए हमें उन पर पूरा भरोसा है।

आसिफ़ साहब का शौक़े-जुस्तजू और ज़ौक़े-तहक़ीक़ निहायत क़ाबिले क़द्र है। उन्होंने अपने ज़रखेज़ ज़ह्न और मुतावाज़ुन क़लम से नातिया अदब पर जो काम किया है, वह इल्मी दयानतदारी के सुबूत के लिए काफ़ी है। साथ ही हालातो-वाक़यात की बिखरी हुई कड़ियों को वह जिस कामिल महारत से इकट्‌ठा करते हैं, वह हुनरमंदी इस किताब से भी साबित है।

मुल्क की लिसानी यकजहती और तहज़ीबी इत्तेहाद के फ़रोग़ की ख़ातिर उन्होंने एक माह से भी कम मुद्‌दत में यह किताब तैयार करके वह कारनामा अंजाम दिया जो दूसरे लोग बरसों में भी नहीं कर सकते। इस किताब की अहमियत का हक़ है कि लेखक की नेक नीयती और उनके क़लमी ख़ुलूस की तारीफ़ की जाए।

मैं आसिफ़ हुसैन के क़लमी मिशन की हमागीर और हर तौर कामयाबी के लिए अपनी नेक ख़्वाहिशात पेश करता हूँ और अपना यह एतमाद भी ज़ाहिर करता हूँ कि यह किताब अदबी हलक़ों में मक़बूलियत के साथ-साथ ख़ुद को मनवा कर आने वाले वक़्त में इस मौज़ू पर तहक़ीक़ी काम करने वालों की मुश्किलात आसान करेगी।

– नजमा हाउस
बारादरी, मुरादाबाद

उर्दू के ख़ज़ाने में एक और नगीना

– सतीश 'फ़िगार'

सुबह का वक़्त था, मैं कचहरी जाने की तैयारी कर रहा था। यकायक मेरा मोबाइल घनघना उठा। मैंने मालूम करना चाहा कि कौन साहब बोल रहे हैं? उधर से जवाब, सवाल की शक्ल में आया ''क्या 'फ़िगार' साहब बोल रहे हैं?'' मैंने कहा,'हाँ, फ़िगार बोल रहा हूँ। उधर से फिर जवाब आया– मैं आसिफ़ बोल रहा हूँ। मैंने आजिज़ी से फ़ौरन जवाब दिया कि यह नाचीज़ आपकी क्या ख़िदमत कर सकता है? आपने मुझे याद किया, इसकी बहुत ख़ुशी हुई। दुआ सलाम के बाद बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ।

हमारी मुलाक़ात पिछले दस बारह साल से है। जब मेरी किताब 'अक्से–जमाल' का इजरा हुआ था तब डा. मुहम्मद आसिफ़ हुसैन ने मेरे तअल्लुक़ से एक मुख़्तसर–सा मक़ाला पढ़ा था। इसके बाद मुलाक़ातों का सिलसिला रहा, लेकिन इधर काफ़ी अरसे से बराहे–रास्त मुलाक़ात नहीं हो सकी थी। बहरहाल उन्होंने अपने असली मक़सद की तरफ़ आते हुए कहा कि मैं आपसे जल्द–अज़–जल्द मिलना चाहता हूँ। मैंने अर्ज़ किया कि मैं आज ही आपके दरे–दौलत पर हाज़िरी देता हूँ और मैं तय वक़्त पर उनकी ख़िदमत में हाज़िर हो गया।

बाद सलाम, कलाम का सिलसिला शुरू हुआ। आसिफ़ साहब ने फ़रमाया कि उन्होंने एक किताब 'मुरादाबाद के ग़ैर मुस्लिम शायर' तरतीब दी है। इस किताब पर मुझसे कुछ लिखवाना चाहते हैं। मैंने अर्ज़ किया कि मैं तो एक अदना–सा शायर हूँ, बस अपनी तसकीने–ज़ौक के लिए थोड़ी बहुत शायरी कर लेता हूँ। नस्र के दो–चार जुमले लिख लूँ तो बड़ी बात है। लिहाज़ा मैंने अपनी तरफ़ से कुछ अच्छे गद्य लेखकों के नाम भी सुझाए, मगर उन्होंने मेरा मशविरा मुसतरद करते हुए मुझे मुख़लिसाना हुक्म दिया कि यह काम आप ही को करना है और वह भी जल्द अज़ जल्द। आख़िर मुझे उनका हुक्मे–मुहब्बत मानना ही पड़ा।

आसिफ़ साहब मेरे करम फरमाओं में से हैं, उनका हुक्म टालना मेरे लिए मुश्किल ही नहीं नामुमकिन था। मैंने वादा तो कर लिया अब उसके एफ़ा की भी फ़िक्र हुई। लिहाज़ा चन्द सतरें सुपुर्दे-क़लम कर रहा हूँ।

इस किताब पर कुछ लिखने से पहले ज़रूरी समझता हूँ कि उनकी शख़्सियत और रुझानात पर भी रोशनी डाली जाए। क्योंकि इसके बग़ैर न तो किताब के साथ और न ही किताब के लेखक के साथ इंसाफ़ हो सकेगा।

डा. मुहम्मद आसिफ़ हुसैन ख़ुश-कलाम, ख़ुश-फ़हम और ख़ुश-मिज़ाज इंसान हैं। बातचीत के दौरान उनके होंठों पर मुस्कराहट तैरती रहती है। हाँ बवक़्ते ज़रूरत कभी लब पर तो कभी ज़ेरे-लब। छोटी उम्र से ही उन्हें अदब से गहरा लगाव रहा है। यह लगाव और ज़ौक़ सिर्फ़ उर्दू से ही नहीं, बल्कि हिन्दी से भी है। यही वजह है कि वह उर्दू और हिन्दी में ज़्यादा फ़र्क़ नहीं मानते, क्योंकि दोनों ही ज़बानें गंगा-जमनी तहज़ीब की अलामत हैं। आसिफ़ साहब फ़िरक़ापरस्ती और तमकिनत से कोसों दूर हैं या यूँ कहिये कि दोनों चीज़ें उन्हें छूकर भी नहीं गुज़री हैं। इस दौर में मुकम्मल और मज़बूत ख़यालात के मालिक हैं, बुग़्ज़ो-हसद वग़ैरा से बे-नियाज़ हैं। दीने-हक़ के मानने वाले हैं और सीधे-सच्चे रास्ते पर चलने की अपनी तरफ़ से भरपूर कोशिश करते हैं। ख़ुदा और उसके रसूल से बे-पनाह मुहब्बत करते हैं। जिसका सुबूत यह है कि उन्होंने उर्दू अदब की सिन्फ़े-सुख़न 'नात' के फ़रोग़ के लिए शहर मुरादाबाद में 'हम्दो-नात फ़ाउंडेशन' की बुनियाद रखी, जिसके सदर जनाब गौहर उस्मानी मरहूम के लख़्ते-जिगर मंसूर उस्मानी साहब हैं, जो लंबे समय से सारी दुनिया में शहरे-जिगर की नुमाइंदगी और नाम रोशन कर रहे हैं। हम्दो-नात फ़ाउंडेशन बग़ैर मज़हबो-मिल्लत नात-गो शायरों को एवार्ड और एज़ाज़ से नवाज़ती है। मुझे भी इस फ़ाउंडेशन की तरफ़ से नातिया व मनक़बती मजमुआ-ए-कलाम 'कौसरे-मिदहत' पर फ़ख़्रे-मिल्लत एवार्ड हासिल हो चुका है।

बहुत-सी मुलाक़ातों के बाद मैंने पाया कि डॉ. मुहम्मद आसिफ़ हुसैन की तबीयत का झुकाव सूफ़ीज़्म की तरफ़ है और यह उनकी बड़ी ख़ूबी है। वह मानव-सेवा का जज़्बा रखते हैं और इंसानों में किसी तरह के भेदभाव के क़ायल नहीं हैं। वह हिन्दुस्तान की गंगा-जमनी तहज़ीब के सिर्फ़ मानने वाले ही नहीं हैं, बल्कि उस पर सख़्ती से अमल भी करते हैं। देश भक्ति उनके दिल में कूट-कूटकर भरी है। वह बिल्कुल सादा मिज़ाज हैं, भीतर-बाहर एक है, तअस्सुब की लानत से पाक हैं। मिज़ाज से जितने नाज़ुक हैं, तबीयत से उनते मुश्किल पसंद हैं, जिसका सुबूत उनकी यह किताब है। अब मैं अपने अस्ल मक़सद की तरफ़ आता हूँ।

'मुरादाबाद के ग़ैर मुस्लिम शायर' में क़रीब पांच दर्जन शायरों का तज़्किरा है। इस किताब में मुरादाबाद के पुराने और मौजूदा ज़माने के शायरों को लिया गया है। यह किताब पढ़कर मुझे ऐसा लगा कि उन्होंने वक़्त की गहरी क़ब्रों में दफ़्न शायरों का तज़्किरा और उनके कलाम पेश करके उन शायरों को मौजूदा नस्लों के सामने लाकर खड़ा कर दिया है। उनमें ज़्यादातर शायर ऐसे हैं कि शायद जिनकी नस्लें भी उन्हें भूल चुकी होंगी। आसिफ़ साहब ने अपने जज़्बा-ए-ख़ुलूस और तहक़ीक़ के जादू से इन शायरों को एक नई ज़िंदगी बख़्शी है। मुझे यक़ीन है कि उनके इस कारनामे से उन शायरों की रूह को बड़ी तसकीन मिलेगी और उनकी मौजूदा नस्लें भी जब इस किताब के ज़रिये अपने पूर्वजों से वाक़िफ़ होंगी तो फ़ख़्र महसूस करेंगी।

पुराने शायरों को ढूंढ निकालना कोई आसान काम नहीं था। लिहाज़ा आसिफ़ साहब को जिस शायर के जितने भी हालात दस्तयाब हो सके और जितना कलाम मिल सका, उसे यहां पेश कर दिया है। इस काम में उन्होंने पूरी दयानतदारी और ईमानदारी से काम लिया है, यह मुझे यक़ीन है। ख़ुशी की बात यह भी है कि उन्होंने मौजूदा दौर के शायरों को भी नज़र-अंदाज़ नहीं किया है, बल्कि उनको भी माक़ूल जगह दी है, ताकि मौजूदा शायरों को भी कोई शिकायत का मौक़ा न मिले।

पुराने शायरों को अमर करने वाले आसिफ़ साहब का यह काम अच्छा ही नहीं, बल्कि सवाब का भी है। बड़ी बात यह है कि उर्दू के ख़ज़ाने में बहुत से ऐसे नगीने भर दिये हैं, जिनकी क़ीमत नहीं आंकी जा सकती। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि यह किताब उर्दू अदब में एक अहम इज़ाफ़ा है जो सिर्फ़ लाइब्रेरी की ज़ीनत ही नहीं बनेगी, बल्कि रिसर्च स्कालर्स के लिए एक आसान रास्ता हमवार करेगी। उम्मीद है कि रिसर्च स्कालर्स इससे ज़रूर फ़ायदा उठाएंगे।

मुझे उम्मीद ही नहीं, बल्कि यक़ीन है कि अहले-मुरादाबाद ख़ासतौर पर ग़ैर मुस्लिम हज़रात इस पर फ़ख्र करेंगे और उनका सीना भी ख़ुशी से चौड़ा होगा और अदबी दुनिया हमेशा-हमेशा इस कारनामे को याद रखेगी।

डा. मुहम्मद आसिफ़ हुसैन से मुझे बड़ी उम्मीदें हैं, मुझे उनका अदबी मुस्तक़बिल बड़ा रोशन नज़र आ रहा है। ख़ुदा की बारगाह में दुआगो हूं कि यह किताब मक़बूले-आम हो और आसिफ़ साहब का अदब की ख़िदमत का जज़्बा इसी तरह जवान बना रहे, एक से बढ़कर एक अदबी शाहकार दुनिया को पेश करते रहें। अहले-नज़र व क़द्र से इसी तरह प्रशंसा पाते रहें। ख़ुदा उन्हें ख़ैरो-आफ़ियत और सेहतो-सलामती के साथ लम्बी उम्र अता फ़रमाए- आमीन।

23 दिसम्बर 2015

- 274, सेक्टर-2, बुद्धिविहार
देहली रोड, मुरादाबाद-244001
मो. 97565-20260

हिंदी अगर है जिस्म, तो उर्दू है आत्मा

– डा. कृष्णकुमार 'नाज़'

कोई भी ज़बान किसी मज़हब या फ़िरक़े की रखैल नहीं होती और न ही वो सरकारों की मेह्रबानियों पर ज़िंदा रहती है। ज़बानें अपने चाहने वालों के दम पर ज़िंदा रहती हैं। जानवर को बेज़बान कह दिया जाता है, लेकिन ऐसी बात नहीं; उसकी अपनी ज़बान होती है। ये बात अलग कि हम उसे समझ नहीं पाते। पशु-पक्षी, पेड़-पौधे सबकी अपनी अलग-अलग बोलियां हैं, अलग-अलग संस्कृतियां हैं। गूंगे की अपनी ज़बान है, वह इशारों की भाषा में बात करता है। ज़बान के लिए शब्दों की नहीं, भावों की ज़रूरत होती है।

जहां तक इंसानी ज़बान की बात है, तो संसारभर में सैकड़ों ज़बानें हैं, जिन्हें हम नहीं जानते। इसका मतलब यह नहीं कि वे ज़बानें बेकार हो गईं। हर भाषा का अपना वजूद है, हर भाषा के चाहने वाले मौजूद हैं। ग़म की अपनी ज़बान है, ख़ुशी की अपनी। मैंने कभी एक शेर कहा था-

जिसकी ग़म से न हो शनासाई
आंसुओं की ज़बान क्या जाने

हर मुल्क की सिर्फ़ एक भाषा है, लेकिन हम ख़ुशक़िस्मत हैं कि हमारी दो भाषाएं हैं- हिंदी और उर्दू। और, दोनों ही भाषाएं मुहब्बतों की दौलत से मालामाल हैं। ख़ुशी की बात यह है कि जो हिंदी को चाहते हैं, वे उर्दू से भी प्यार करते हैं और जो उर्दू के तरफ़दार है, वे हिंदी का भी गर्मजोशी से स्वागत करते हैं।

दुष्यंत ने अपनी पुस्तक 'साये में धूप' की भूमिका में लिखा है कि हिंदी और उर्दू दो जुड़वां बहनें हैं और जब ये अपने-अपने सिंहासन से उतरकर एकसाथ खड़ी होती हैं, तो यह पहचान पाना मुश्किल हो जाता है कि कौन हिंदी है और कौन उर्दू।

मेरा मानना है कि हिंदी अगर फूल है, तो उर्दू उसकी ख़ुशबू; हिंदी

अगर आंख है, तो उर्दू उसकी रोशनी; हिंदी अगर दिल है तो उर्दू उसकी धड़कन; हिंदी अगर शरीर है तो उर्दू उसकी आत्मा है। यानी दोनों भाषाओं को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। अगर उर्दू को अलग कर दिया गया तो हिंदी को बहुत भारी नुक़सान होगा और हिंदी को ख़त्म करने की कोशिशें की गईं तो उर्दू ज़िंदा नहीं रहेगी। यानी दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं। यही कारण है कि साहित्यिक इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिंदी का भंडार भरने में बहुत सारे मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान भुलाया नहीं जा सकता। वहीं उर्दू की दुल्हन को सजाने-संवारने में हिंदू साहित्यकारों ने दिन-रात एक कर दिया। किसी ने उसके चौड़े माथे पर बिंदी लगाई, तो किसी ने उसकी ज़ुल्फ़ें संवारीं; किसी ने उसे साड़ी पहनाई, तो किसी ने उसमें चूनट निकालीं।

दरअस्ल ऐसा इसलिए हुआ कि हिंदी और उर्दू में सिर्फ़ लिपि का अंतर है। एक देवनागरी लिपि में लिखी जाती है, तो दूसरी फ़ारसी लिपि में। भाषा तो वहां बदलती है, जब शब्दावली बदल जाए, जब क्रियाएं बदल जाएं। बहुत-से लोग भाषा और लिपि में अंतर नहीं समझ पाते। वे लिपि को भाषा और भाषा को लिपि समझने की भूल कर बैठते हैं। मैं अपनी बात को यूं समझाना चाहूंगा कि मैंने एक वाक्य लिखा- 'मैं जा रहा हूं'- इसे यदि देवनागरी लिपि में लिख दिया जाए तो हिंदी और फ़ारसी लिपि में लिख दिया जाए तो उर्दू। यहां लिपि ही तो बदली, शब्द या क्रियाएं कहां बदलीं? हां, अगर मैं लिखूं- आई एम गोइंग- तो यहां भाषा बदल जाती है, क्योंकि यहां शब्द भी बदले और क्रियाएं भी। इसीलिए मैं हिंदी और उर्दू में अंतर नहीं समझता। दोनों हिंदुस्तान में पैदा हुई हैं और यहीं पली-बढ़ी हैं।

लेकिन अफ़सोस, हमारी उथली राजनीति ने वोट बैंक बढ़ाने की नीयत से चंद 'अंगूठा-छापों' को भड़काकर दोनों भाषाओं में विद्वेष की दीवार खड़ी कर दी। हिंदी वाले भाषा में संस्कृत के अप्रचलित शब्दों को ठूंसकर उसे बेमज़ा कर रहे हैं, तो उर्दू वाले अरबी और फ़ारसी के मोटे-मोटे अनसुने अल्फ़ाज़ इस्तेमाल करके उसकी रवानी में बाधक बने

हुए हैं। सियासत-बाज़ों को इसमें सफलता भी मिल गई है। अब वे भाषा के नाम पर आसानी से दंगे करा देते हैं। जाहिल तबीअत के पढ़े-लिखे लोग भी उनके बहकावों में आसानी से आ जाते हैं। हमारे राजनीतिज्ञों ने इसमें सफलता भी पा ली है। वे हिंदी पर हिंदू और उर्दू पर मुसलमान का ठप्पा लगाने में कामयाब हो गए हैं।

जब बात चल ही रही है, तो मैं आपको एक घटना भी बताता चलूं। क़रीब दो-तीन साल पुरानी बात है। अलीगढ़ के ऊपरकोट मुहल्ले में मुशायरा था। मंच पर मैं अकेला ग़ैर मुस्लिम शायर था। रात में क़रीब एक बजे नाज़िम ने मेरा नाम पुकारा। मैं माइक पर खड़ा ही हुआ था कि मंच के आसपास मंडरा रहे क़रीब डेढ़ दर्जन लड़कों ने शोर मचाना शुरू कर दिया- 'बैठ जाओ, बैठ जाओ'। यह घटना मेरे लिए अप्रत्याशित थी। मैं सोचने लगा कि क्या करूं, बैठ जाऊं या शेर पढ़ूं। चूंकि मंच पर ज़्यादातर शायर मुझे जानते थे, वो बोले नाज़ भाई आप शेर पढ़िये। आगे बैठे सामइन में से भी एक सज्जन की आवाज़ उभरी, अबे लौंडो बैठ जाओ, पहले शेर सुनो। मुझे कुछ हिम्मत बंधी। मैंने शेर पढ़े, जमकर दाद मिली। तभी सामने से फिर एक बुज़ुर्ग की आवाज़ आई- 'देखा! इसे कहते हैं शायरी, तुम लोग शोर मचा रहे थे'। ऐसी घटना एक बार लखनऊ में भी हुई। मुझे बड़ा अफ़सोस हुआ यह सोचकर कि उर्दू के विकास में क्या ग़ैर मुस्लिमों का योगदान नहीं है। साहित्यिक इतिहास इस बात का गवाह है कि अगर ग़ैर मुस्लिमों को उर्दू साहित्य से हटा दिया जाए, तो एक बड़ा ख़ालीपन हो जाएगा, जिसे सदियां भी नहीं भर पाएंगी। मैं यहां यह भी कहना चाहता हूं कि भाषा ही नहीं, बल्कि हमारे बहुत से महापुरुष ऐसे हैं, जिन्होंने संपूर्ण समाज के लिए काम किया; लेकिन उनके बाद जब उन्हें किसी धर्म या जाति ने अपनाया, तो दूसरे लोग उनसे अलग हो गए। समाज की परिकल्पना उतनी ही बड़ी है, जितनी धरती से आकाश की दूरी। लेकिन इन व्यवधानों से घबराने की ज़रूरत नहीं, जाहिलों की शरारतें अपनी जगह और बुद्धिजीवियों की करिश्माई मुहब्बतें अपनी जगह।

ऐसा नहीं कि इन हादसों को केवल नकारात्मक ऊर्जा बल दे रही है, सकारात्मक ऊर्जा वाले लोग भी हर काल में समाज में रहे हैं और रहेंगे। उन्हीं की बदौलत आज इंसानियत ज़िंदा है और ज़िंदा रहेगी।

आज भी कई लोग ऐसे हैं, जो ज़बानों को बग़ैर मज़हबी भेदभाव के ज़िंदा रखना चाहते हैं। ऐसे लोग सिर्फ़ यह देखते हैं कि किस व्यक्ति का किस भाषा में कितना योगदान है। ऐसे लोग माज़ी पर भी नज़र रखे हुए हैं, हाल पर भी और मुस्तक़बिल पर भी। और, मैं बड़े अदब से गुज़ारिश करना चाहता हूं कि ऐसे चंद आला-ज़ह्न लोगों में भाई डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन हैं, जिन्हें मैं प्यार ही नहीं करता, बल्कि दिल की गहराइयों से उनका सम्मान करता हूं। आसिफ़ साहब जिस काम का बीड़ा उठाते हैं, उसे बड़ी तरतीब और सलीक़े के साथ अंजाम देते हैं। वो हर वक़्त कुछ ऐसा नया करने की सोचते हैं, जो हमेशा ज़िंदा रहे। यह उनकी आला सोच का ही नतीजा है कि 'मुरादाबाद के ग़ैर मुस्लिम शायर' नाम से एक ऐसी किताब आ रही है, जो ख़ुद भी हमेशा ज़िंदा रहेगी और अपने लेखक को भी ज़िंदा रखेगी।

इस किताब को उन्होंने दो भागों में बांटा है। पहला हिस्सा उन ग़ैर-मुस्लिम शायरों के नाम है जो अब दुनिया में नहीं हैं, लेकिन फ़ख़्र के साथ उनका ज़िक्र किया जा रहा है कि उन्होंने उर्दू अदब की ख़िदमत की। दूसरे हिस्से में ऐसे शायरों को शामिल किया गया है, जो आज भी उर्दू अदब की ज़ुल्फ़ें संवारने में मसरूफ़ हैं।

दरअस्ल आसिफ़ साहब अदबी ज़ौक़ और शौक़ के इंसान हैं। उनकी अपनी लाइब्रेरी में ही सैकड़ों दुर्लभ पुस्तकें हैं। उन्हें अगर कहीं से कुछ अच्छा मिल रहा है, तो उसे हासिल करके रहते हैं, चाहे इसके लिए उन्हें कोई भी क़ीमत क्यों न अदा करनी पड़े। इस किताब में उन्होंने 55 शायरों को शामिल किया है। इनमें 47 शायर ऐसे हैं, जो अपनी ख़िदमात अंजाम देकर जन्नतनशीन हो चुके हैं और आठ शायर अभी उर्दू अदब की ख़िदमत कर रहे हैं।

कबीर के दोहे की एक पंक्ति है– 'जो घर फूंके आपनो, चले हमारे साथ'। आर्थिक रूप से देखा जाए तो साहित्य घाटे का सौदा है और मरने के बाद भी अगर ज़िंदगी तलाशी जाए तो वह सिर्फ़ साहित्य में मौजूद है। आज बहुत से शायर ऐसे हैं, जिन्होंने ज़िंदगीभर उर्दू अदब की ख़िदमत की, लेकिन जीते जी अपनी कोई किताब प्रकाशित न करा सके। औलादों की अदब में कोई दिलचस्पी न थी, इसलिए उन्होंने बाप की इस अदबी जागीर को सहेजने–संवारने और छपवाने में कोई रुचि नहीं दिखाई। नतीजा यह रहा कि बहुत–से शायरों को आज कोई जानता ही नहीं।

उर्दू अदब में ग़ैर–मुस्लिमों के योगदान पर काफ़ी पुस्तकें लिखी गई हैं। इसी सिलसिले को आगे बढ़ाते हुए ईरान ऐम्बेसी नई दिल्ली द्वारा जनवरी 2011 में एक बहुत महत्त्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित की गई है– 'हमारे रसूल'। 632 पृष्ठीय इस भारी–भरकम पुस्तक में सिर्फ़ ग़ैर–मुस्लिम शायरों का नातिया कलाम है। इस पुस्तक का संपादन प्रतिष्ठित उर्दू लेखक डा. धर्मेंद्रनाथ द्वारा किया गया है। बहुत दुख हुआ, जब अख़बार में पढ़ा कि डा. धर्मेंद्रनाथ का 24 सितंबर 2016 में स्वर्गवास हो गया है। भाई आसिफ़ हुसैन ने इस पुस्तक से भी मुरादाबाद के ग़ैर–मुस्लिम शायरों को तलाशा। इसके अलावा पुरानी किताबों और मैगज़ीनों में उन्हें ढूंढा और इतिहासवेत्ताओं तथा बुज़ुर्गों से बात कर ऐसे ग़ैर–मुस्लिम शायरों को खोजा, जिन्होंने उर्दू अदब की ख़िदमत की। जिस शायर का जितना भी परिचय और कलाम मिला, उसे इस किताब में जगह दी और समाज के सम्मुख लाकर रख दिया। अब समाज की ज़िम्मेदारी है कि वो इस किताब पर क्या रुख़ इख़्तियार करता है। हालांकि उन्हें कई शायरों की जन्म और स्वर्गवास की तिथि उपलब्ध नहीं हो सकी। अख्यात साहित्यकारों को ढूंढना और उनके बारे में सामग्री खोजबीन कर इकट्ठा करना बहुत मुश्किल काम है, जिसे आसिफ़ साहब ने आसान कर दिखाया है। यह किताब उन शोधार्थियों के लिए बहुत उपयोगी है, जो इस दिशा में काम करना चाहते हैं। आसिफ़ साहब चूंकि अदबनवाज़

इंसान हैं, इसलिए उन्होंने अपनी अदबी ज़िम्मेदारी महसूस करते हुए इस काम को अंजाम दिया। अपनी व्यस्तताओं से वक़्त भी निकाला और धन भी ख़र्च किया। उनकी जहां तक रसाई थी, उन्होंने भरपूर मेहनत की। उन्होंने तो मुहब्बतों का एक पौधा रोप दिया। अब आने वाली पीढ़ी का काम है कि वो इसे पाल-पोसकर दरख़्त कैसे बनाती है। देखना है कि हमारे भावी कर्णधार इस पुस्तक का कितना उपयोग करते हैं। मैं चाहता हूं कि नौजवान शोधार्थी आगे आएं और आसिफ़ साहब के मुहब्बत भरे कारनामे को और ऊंचाइयां देकर मंज़िल तक पहुंचाएं।

मेरा यह जुमला हमेशा आवाज़ लगाता रहेगा- 'ज़िंदाबाद आसिफ़ साहब ज़िंदाबाद'।

- सी-130, हिमगिरि कालोनी,
कांठ रोड, मुरादाबाद-244001
मो. 98083-15744, 99273-76877

दिल की बात

उनका जो फ़र्ज़ है वो अहले-सियासत जानें
मेरा पैग़ाम मुहब्बत है जहां तक पहुंचे

हिन्दुस्तान की मिली-जुली तहज़ीब और गंगा-जमनी संस्कृति की अलामत एक ऐसी ज़बान जो सूफ़ी-संतों के मद भरे उपदेशों के ज़रिये वजूद में आई। मुख़्तलिफ़ इलाक़ों के वासियों को एक-दूसरे से जोड़ने के लिए, एक दूसरे का दिल जीतने के लिए, विपदा सुनने के लिए, दर्द बांटने के लिए, अपनी बात कहने के लिए, दूसरों की बात सुनने के लिए, एक माध्यम, एक ज़रिया बनकर उभरी। जिसके शुरूआती नक़्श ख़ुसरो की कहमुकरनियों में, दोहों और पहेलियों में नज़र आते हैं। नानक की वाणी में जिसकी चाशनी मिलती है। जायसी की पद्मावत में, पृथ्वीराज रासो में, बिहारी की सतसई और मीरा के पदों में जिसकी ख़ुशबू महसूस की जा सकती है। जिसे ख़ुसरो ने 'हिन्दवी', मुस्हफ़ी ने 'हिन्दी' और महात्मा गांधी ने हिन्दुस्तानी कहा और आज हम उसे उर्दू कहते हैं।

उर्दू की मक़बूलियत और हर दिल अज़ीज़ी की वजह वो ख़ुलूस है जो इसे दरवेशों और सूफ़ियों से हासिल हुआ, जिसकी वज़ाहत करते हुए बाबा-ए-उर्दू मौलवी अब्दुल हक़ लिखते हैं-

''दिलों को हाथ में लेने के लिए सबसे पहले हमज़बानी लाज़िम है। हमज़बानी के बाद हमख़याली पैदा होती है। दरवेश यानी सूफ़ी का तकिया सबके लिए खुला है। बिला इम्तियाज़े-क़ौमो-मिल्लत लोग उनके पास आते और उनकी ज़ियारत और सोहबत को मूजिबे-बरकत समझते थे। आमो-ख़ास की कोई तफ़रीक़ न थी। ख़वास से ज़्यादा अवाम उनकी तरफ़ झुकते थे। इसलिए तलक़ीन के लिए उन्होंने जहां और ढंग इख़्तियार किये उनमें सबसे मुक़द्दम यह था कि उस ख़ित्ते की ज़बान सीखें, ताकि अवाम तक अपना पैग़ाम पहुंचा सकें। चुनांचे जितने औलिया अल्लाह सर-ज़मीने-हिन्द में आये या यहां पैदा हुए, वो

बावजूद आलिमो–फ़ाज़िल होने के अवाम से उन्हीं की बोली में बातचीत करते और तालीमो–तलक़ीन फ़रमाते। यह बड़ा गुर था और सूफ़िया इसे ख़ूब समझते थे।''

– (उर्दू की इब्तेदाई नशोनुमा में सूफ़िया–ए–कराम के काम, पृ. 4)

लिहाज़ा जैसे–जैसे इन मुहब्बत के पैग़ाम्बरों यानी सूफ़ियों का हलक़ा बढ़ता गया, उनके अक़ीदतमन्दों का सिलसिला तवील होता गया। वैसे उनके राबिते के वसीले के तौर पर एक ऐसी ज़बान वजूद में आई जो न अरबी थी, न फ़ारसी, न पश्तो थी और न सिंधी; बल्कि वह इन तमाम भाषाओं के अल्फ़ाज़ का एक ऐसा मिश्रण था जो संस्कृत, पाली, अपभ्रंश, खड़ी बोली, कन्नौजी और भारत की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों के मेल–जोल से तैयार हुआ था। जब इन अल्फ़ाज़ को फ़ारसी लिपि में लिखा गया, तो इसे उर्दू कहा जाने लगा, जो हमारे मुल्क यानी हिन्दुस्तान की इन्फ़रादी शान यानी अनेकता में एकता की बड़ी दलील है।

चूंकि इस ज़बान की परवरिश ख़ानक़ाहों में हुई थी, सूफ़ियों ने इसको अपनाया, आलिमों और विद्वानों ने इसके महत्व एवं उपयोगिता को समझा और उसे राबिते की ज़बान के तौर पर फ़रोग़ दिया था, लिहाज़ा यह उन्हीं महात्माओं का अहसान है कि आज यह ज़बान एक ऐसा ज़रिया, वास्ता, वसीला और माध्यम बन चुकी है कि सारे विश्व में इस ज़बान को हरदिल अज़ीज़ी हासिल है, जिसका जादू सर चढ़कर बोल रहा है और आज भी इसके ज़रिये प्रेम के साग़र पिलाये जा रहे हैं। 'मंसूर' उसमानी ने क्या ख़ूब कहा है कि–

जहां–जहां कोई उर्दू ज़बान बोलता है
वहीं–वहीं मेरा हिन्दोस्तान बोलता है

ऐसा नहीं है कि इस ज़बान में यह ख़ूबी, यह सलासत, यह रवानी, यह शुस्तगी और शाइस्तगी यक–बयक आ गई या उन सूफ़ी–संतों ने

यक–बयक यह ज़बान पेश कर दी, बल्कि इसका क्रमिक विकास हुआ। शुरू में किसी की ज़बान से एक लफ़्ज़ निकला तो किसी की ज़बान से एक वाक्य, किसी की ज़बान से एक मिसरा तो किसी की ज़बान से पूरा एक शेर निकला, जिसकी मिसालें भाषा और साहित्य के इतिहास में जगह–जगह मिलती हैं। अगर उनका यहां ज़िक्र किया जाये तो एक किताब तैयार हो जाये, लिहाज़ा संक्षेप से काम लेते हुए चन्द मिसालें मुलाहिज़ा कीजिए–

बाबा फ़रीद गंज शकर का बहुत–सा कलाम गुरुग्रंथ साहब में शामिल है, उनके यहां उर्दू प्रारम्भिक रूप में देखने को मिलती है, जैसे–

जोबन जाये तो जाये, पर पिया की पीत न जाये
देख सखी जोबन कितने, बिन प्रीत के कुम्हलाये

–(तारीख़े–अदब उर्दू, पृ. 377, लेखक सैयदा जाफ़र, ज्ञानचन्द जैन)

इसी तरह बू अली शाह क़लंदर पानीपती की ज़बान से यह दोहा निकला –

सजन सकारे जायेंगे, नैन मरेंगे रोय
बधना ऐसी रैन कर, भोर कधी ना होय

(वही, पृ. 383)

आइये अब ऐसी शख़्सियत की तरफ़ चलते हैं जो उर्दू और हिन्दी के बीच की एक अहम कड़ी है। अगर उर्दू अदब की तारीख़ उनके ज़िक्र के बग़ैर मुकम्मल नहीं होती, तो हिन्दी साहित्य में भी उनकी ख़िदमात को नज़र अन्दाज़ नहीं किया जा सकता। बक़ौल मंसूर उस्मानी–

हिन्दी रानी देश की, उर्दू जिसका ताज
ख़ुसरो जी की शायरी, इन दोनों की लाज

ख़ुसरो का अक्सर कलाम फ़ारसी में है और कुछ हिन्दी में भी है। उनके इस हिन्दी कलाम में ही उर्दू के प्रारम्भिक नमूने मिलते हैं। बक़ौल हामिद हसन क़ादरी– ‘‘उनको हिन्दी ज़बान से ख़ास मुहब्बत थी इसलिए

उन्होंने हिन्दी अल्फ़ाज़ अपनी फ़ारसी नज़्मों में भी कसरत से इस्तेमाल किये हैं।" (दास्ताने-तारीख़े-उर्दू, पृ. 52)। उनका मशहूर दोहा है-

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस
चल ख़ुसरो घर आपने, सांझ भई चहुं देस

या उनकी मशहूर ग़ज़ल के ये अशआर-

ज़े हाले मिस्कीं मकुन तग़ाफ़ुल, दुराय नैना बनाए बतियां
कि ताबे हिजरां न दारम ऐ जां, न लेहूं काहे लगाए छतियां
शबाने हिजरां दराज़ चूं ज़ुल्फ़, व रोज़े वस्लश चु उम्र कोताह
सखी पिया को जो मैं न देखूं तो कैसे काटूँ अंधेरी रतियां
यकायक अज़ दिल दो चश्मे जादू बसद फ़रेबम बबुर्दे तस्कीं
किसे पड़ी है जो जा सुनावे, पियारे पी को हमारी बतियां

-(उर्दू की इब्तेदाई नशोनुमा में सूफ़िया-ए-कराम के काम, पृ. 12)

ख़्वाजा बन्दा नवाज़ गेसू दराज़ दकनी ज़बान के शायर हैं। उनके कलाम में दकनी के साथ उर्दू की प्रारम्भिक शक्ल मुलाहिज़ा कीजिये-

ऐ मुहम्मद हुजलू जम जम जलवा तेरा
ज़ात तजल्ली होयगी सीस सपूरना सहरा
वाहिद अपनी आप था अपीं आप नझाया
पर कट्टा जलवे काड़ के अलिफ़ मीम हो आया
अश्क़ों जलवा देने कर काफ़ नून बसाया

शेख़ अब्दुल क़ुद्दूस गंगोही रह. फ़ारसी के साथ अलखदास उपनाम से हिंदी में भी शायरी करते थे। देखिये उनके यहां उर्दू और हिन्दी का कितना हसीन संगम मिलता है-

सिद्क़ रहबर, सब्र तोशा, दश्त मंज़िल, दिल रफ़ीक़
सत्त नगरी, धर्म राजा जोग मारग (कज़ा)

इन मिसालों के पेश करने का मक़सद यह था कि उर्दू का विकास बुज़ुर्गों के ज़रिये ख़ालिस हिन्दुस्तानी माहौल में हुआ और उसकी

बुनियाद में प्रेम, मुहब्बत और भाईचारे का तत्व शामिल है।

इसी तरह अगर हिन्दी कवियों को देखा जाए तो उनके यहां भी अरबी, फ़ारसी और तुर्की के अल्फ़ाज़ बड़ी तादाद में इस्तेमाल हुए हैं। मसलन कबीरदास के ये शेर देखिये-

हमन हैं इश्क़ मस्ताना हमन को होशियारी क्या
रहें आज़ाद या जग में, हमन दुनिया से यारी क्या
कबीरा इश्क़ का नाता, दुई को दूर कर दिल से
जो चलना राह नाज़ुक है, हमन को बोझ भारी क्या

-(दास्ताने-तारीख़े-उर्दू, पृ. 57)

प्रोफ़ेसर मुहम्मद हसन ने अपनी किताब 'हिन्दुस्तानी रंग' में गुरुग्रंथ साहब, सूरदास, तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी, पृथ्वीराज रासो, बिहारी सतसई, कबीर और मीराबाई के कलाम से सैकड़ों अरबी-फ़ारसी और तुर्की अल्फ़ाज़ की फ़हरिस्त दी है, जिसको देखकर यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि हमारे बुज़ुर्गों ने भाषा को सिर्फ़ माध्यम या वसीले के तौर पर इस्तेमाल किया, मुहब्बत का पैग़ाम पहुंचाने के लिए, प्यार की जोत जलाने के लिए। उन्होंने भाषा को धर्म से नहीं जोड़ा, बल्कि दिल से जोड़कर दिलों को जोड़ने की बात की। क्योंकि-

दिल से जो बात निकलती है असर रखती है
पर नहीं, ताक़ते-परवाज़ मगर रखती है

- इक़बाल

जब दिल मिले और दिल से बात निकली तो फिर रसखान, बरकत उल्लाह प्रेमी, नसीम महमूद और मीर फ़ैज़ उल्लाह जैसे कवि नज़र आते हैं, जो भक्ति काव्य के आकाश पर आज भी जगमगाते हैं। दूसरा रुख़ यह देखिये कि हज़ारों हिन्दू शायर पैग़म्बरे-इस्लाम हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहिवसल्लम की मदह और तौसीफ़ (गुणगान) में सरगर्म नज़र आते हैं। अगर ऐसे हिन्दुओं की फ़हरिस्त मुरत्तब की

जाये तो हज़ारों नाम शामिल हो जायेंगे। वर्तमान पर ही नज़र डालें तो सैंकड़ों नामों की फ़हरिस्त सामने आ जाती है। राजा किशनकुमार शाद, पंडित दिल्लूराम कौसरी, साधूराम आरज़ू सहारनपुरी, हरीचन्द अख़्तर, गुरसरन लाल अदीब लखनवी, चन्द्रभान ख़याल वग़ैरा ऐसे नाम हैं जो नातगोई (अर्थात पैग़म्बर साहब का गुणगान) के हवाले से भी अपनी शिनाख़्त रखते हैं। अच्छी बात यह है कि हिन्दू शायरों के नातिया कलाम के संकलन और समीक्षाएं भी प्रकाशित हुई हैं। अभी हाल ही में डा. धर्मेंद्रनाथ ने 'हमारे रसूल' नाम से बहुत अच्छा संकलन प्रकाशित कराकर ऐसे सैकड़ों शायरों को प्रकाश में लाने की कामयाब कोशिश की है।

उपरोक्त गुफ़्तगू का हासिल यह है कि उर्दू किसी एक फ़िरक़े की ज़बान नहीं, बल्कि उर्दू भारत में जन्मी और हमारी साझा सभ्यता और संस्कृति की निशानी है। इसके विकास में जितनी हिस्सेदारी मुसलमानों की है, हिन्दुओं का योगदान भी किसी तरह कम नहीं है। लिहाज़ा ज़रूरी हो जाता है कि जिन बा-कमालों ने इस ज़बान के फ़रोग़ में, इसकी बक़ा और तरक़्क़ी में हिस्सा लिया, उनके कारनामों को याद रखा जाये, उन्हें ज़िन्दा किया जाय। बक़ौल अताउल्ला पालवी-

"जब इंसान के अफ़कारो-आमाल ही उसे ज़िन्दा जावेद बनाते हैं तो जिन बा-कमालों ने ख़िदमते-उर्दू में अपना ख़ूने-जिगर पानी किया था, क्या उनके नाम व काम को ज़िन्दा रखना ज़रूरी और मुक़द्दस फ़रीज़ा नहीं। उर्दू के न जाने कितने सुख़नवर और उस्तादे-कामिल ज़माने की बे-तवज्जोही और ग़फ़लत का शिकार बनकर फ़ना हो गये और आज उनका नाम और काम लोगों के सामने नहीं। इस ख़ुसूसियत में न हिन्दुओं की क़ैद है और न मुसलमानों की। दोनों फ़िरकों के असहाबे-कमाल और अरबाबे-कलाम इस फ़रो-गुज़ाश्त से मुतास्सिर हुए।"

-(उर्दू के हिन्दू मसनवी निगार, पृ. 51)

ख़ुदा का शुक्र है कि उर्दू वालों ने तज़्किरा नवीसी की इब्तिदा करके ऐसा कारनामा अंजाम दिया है कि जिसकी मिसाल दीगर ज़बानों में नहीं मिलती। तज़्किरा-नवीसी के आग़ाज़ का सेहरा मीर तक़ी 'मीर' के सर है जिन्होंने 1752 ई. में तज़्किरा 'निकातुश्शोअरा' लिखकर इसकी इब्तिदा की, जिसमें मुसलमानों के साथ-साथ हिन्दू शायर भी शामिल हैं। तबसे आज तक सैकड़ों तज़्किरे लिखे जा चुके हैं और आज भी लिखे जा रहे हैं। उर्दू के फ़ितरी मिज़ाज के मुताबिक़ इन तज़्किरों के लिखने वाले मुसलमान भी हैं और हिन्दू भी। मुसलमान ने लिखा तो हिन्दू शायर का भी तज़्किरा किया और हिन्दू ने लिखा तो मुसलमान शायरों का ज़िक्र ज़रूर किया। ऐसे तज़्किरे भी लिखे गये हैं जो सिर्फ़ हिन्दू अदीबों और शायरों के ज़िक्र पर आधारित हैं। इनके लिखने वालों में हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी हैं। नीचे कुछ ऐसे तज़्किरों की फ़हरिस्त दी जा रही है जो सिर्फ़ हिन्दू शायरों और अदीबों पर आधारित हैं-

(1)	यदे बैज़ा	ग़ुलाम हमदानी मुस्हफ़ी
(2)	तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-हुनूद	देवीप्रसाद बश्शाश
(3)	उर्दू और हिन्दू	श्याममोहन लाल जिगर बरेलवी
(4)	हिन्दू शोअरा	अब्दुर्रऊफ़ इशरत
(5)	उर्दू से हिन्दुओं का तअल्लुक़	अजमल अजमली
(6)	बहारे-सुख़न	श्यामसुन्दर लाल बर्क़
(7)	उर्दू के हिन्दू अदीब	नाज़िर काकोरवी
(8)	तज़्किरा हिन्दू शोअरा-ए-बिहार	फ़सीह उद्दीन बलख़ी
(9)	बंगाली हिन्दुओं की उर्दू ख़िदमात	शान्ति रंजन भट्टाचार्य
(10)	दकनी हिन्दू और उर्दू	नसीर उद्दीन हाशमी
(11)	दौरे-जदीद के चन्द हिन्दू शोअरा	अब्दुल शकूर बरेलवी
(12)	यादे-रफ़्तगां	श्याममोहन लाल जिगर
(13)	हिन्दुओं में उर्दू	रफ़ीक़ मारहरवी
(14)	उर्दू के हिन्दू शोअरा	अब्दुस्सलाम ख़ुर्शीद

(15)	बहारे–गुलशने–कश्मीर	बृजकिशोर 'बेख़बर'
(16)	बहारे–जाविदां	श्याममोहन लाल जिगर
(17)	19वीं सदी के चंद हिंदू शोअरा	अब्दुस्सत्तार हामिद
(18)	क्लासिकल हिन्दू शोअरा	वीरेन्द्रप्रसाद सक्सेना बरेलवी
(19)	शोअरा–ए–हुनूद (मौजे–गंग)	जौहर देवबन्दी
(20)	उर्दू के हिन्दू मसनवी निगार	अता उल्लाह पालवी
(21)	अमरोहा के हिन्दू शोअरा	डा. मिस्बाह अहमद सिद्दीक़ी

कुछ तज़्किरे ऐसे भी लिखे गये हैं कि जिनमें हिन्दू शायरों के अलावा दूसरे धर्मों के शायरों को भी शामिल किया गया है, जैसे शादाब ज़की की किताब 'ग़ैर मुस्लिम शोअरा–ए–बदायूं' इसी तरह मसीही शोअरा की ख़िदमात को डी.ए. हैरिसन 'क़ुरबान' ने 'उर्दू के मसीही शोअरा' लिखकर उजागर किया ।

उपरोक्त वर्णन से यह बात साबित होती है कि उर्दू के विकास में हिन्दू हज़रात की हिस्सेदारी को कहीं भी नज़र–अंदाज़ नहीं किया गया और यही इंसाफ़ व दयानतदारी का तक़ाज़ा भी है। कई कारनामों में तो अव्वलीयत (पहल) का सेहरा हिन्दू हज़रात के सर है, मसलन उर्दू का सबसे पहला अख़बार 'जामे–जहांनुमा' 1823 ई. में मुंशी सदासुख लाल ने कलकत्ता से निकाला। इसी तरह हिन्दुस्तान में फ़ारसी ज़बान का पहला अख़बार निकालने का सेहरा राजा राममोहन राय के सर है, जो 1822 ई. में कलकत्ता से हफ़्तरोज़ा (साप्ताहिक) 'मरातुल अख़बार' निकाल रहे थे। मुख़्तसर यह कि उर्दू की तरवीजो–इशाअत और फ़रोग़ के लिए हिन्दू हज़रात की ख़िदमात को न तो नज़र अन्दाज़ किया गया है और न ही किया जा सकता है।

यह तज़्किरा भी इसी मक़सद को ध्यान में रखकर तरतीब दिया गया है। मैं न तो कोई अदीब हूं और न ही कोई दानिशवर, बल्कि अदीबों और दानिशवरों का ख़ोशाचीं हूं और यह यक़ीन रखता हूं कि जो बुज़ुर्ग है, वो बुज़ुर्ग है; जो बा–कमाल है, वो बा–कमाल है; चाहे हिन्दू हो या

मुसलमान या किसी भी मज़हब का मानने वाला हो, उसकी क़द्र की जानी चाहिये और इसीलिए उनके कारनामों को जिन्दा रखना अपनी ज़िम्मेदारी समझता हूं।

मुरादाबाद की तारीख़ में ऐसे बहुत से नाम हैं, जिन्होंने बिना भेदभाव उर्दू के साथ हिन्दी को भी अपने ख़यालात के इज़हार का ज़रिया बनाया। मसलन, शाह ग़ुलाम मुस्तफ़ा इंसान मुरादाबादी उर्दू और फ़ारसी के साथ हिन्दी ज़बान पर भी दस्तरस रखते थे। जैसा कि शायान बरेलवी ने लिखा–

''शाह ग़ुलाम मुस्तफ़ा अहदे–आलमगीरी में मंसबदार थे। सर्वे–आज़ाद में लिखा है कि आप हिन्दी ज़बान में भी शेर ख़ूब कहते थे और असातज़ा शोअरा–ए–हिन्दी आपके कलाम के मुतअरिफ़ थे और अपनी किताबों और दोहों पर इस्लाह लेते थे।''

– (शोअरा–ए–रुहेलखण्ड, भाग–4, पृ. 2647)

इसी तरह मुरादाबाद के मशहूर सूफ़ी बुज़ुर्ग हज़रत शाह बुलाक़ी साहब, जिनकी दरगाह आज भी राष्ट्रीय एकता का केंद्र बनी हुई है, ने भी फ़ारसी और उर्दू के साथ अपने जज़्बात और हिदायतों को ख़ालिस हिन्दुस्तानी रंगो–आहंग में दोहों की शक्ल में इस तरह पेश किया है–

मरने से सब जग डरे, पंछी और सब जीव
'बोला' सुन नहजो बह्यो, मरे मिलत हैं पीव

\+ + +

'बोला' भूला क्या फिरे, मन को किये उदास
साईं मन में यूं बसें, ज्यों फूलन में बास

\+ + +

'बोला' भूला क्या फिरे, अब भी तो टुक चेत
बिन जोते बिन बाह दिये, बीज न लेवत खेत

\+ + +

सारन बिरहन मोह मिली, करते अपना काज
ओह अखट हों यूं सुने, लियो पी आज प्याज

इसी तरह बुहत से नाम होंगे जो गर्दिशे-वक़्त के हाथों महफ़ूज़ नहीं रह सके। नीज़ यह कि मुरादाबाद के पीतल की चमक ने भी यहां के इल्मो-अदब की शम्अ को मांद कर दिया है और कुछ हमारी ग़फ़लत कि हम अपने अदबी सरमाये की हिफ़ाज़त नहीं कर सके, क्योंकि इसकी अहमियत व अज़्मत का हमें एहसास ही नहीं रहा। इसमें दोनों का हाल एक जैसा है, वो उर्दू वाले हों या हिन्दी वाले, मुरादाबाद की अदबी तारीख़ मुरत्तब करने या उसकी हिफ़ाज़त की ज़रूरत किसी ने महसूस नहीं की। नतीजतन हमारा अक्सर सरमाया बर्बाद हो चुका और मुरादाबाद की इल्मी व अदबी तारीख़ का सुनहरा अध्याय हमारी नज़रों से ओझल होता जा रहा है। लेकिन 'देर आयद दुरुस्त आयद' के समान बीते चन्द सालों में इस दिशा में कुछ सरगर्मियां हुईं और दोनों ज़बानों के कुछ लोग इस मैदान में सरगर्मे-अमल हुये हैं । उम्मीद है कि कुछ न कुछ सकारात्मक नतीजे ज़रूर निकलेंगे।

मैं अपनी किताब 'तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-मुरादाबाद' (इब्तिदा से उन्नीसवीं सदी तक) की तरतीबो-तालीफ़ में मशग़ूल था (जो जल्दी ही शाया होने वाली है) कि डा. मंसूर अहमद सिद्दीक़ी साहब (प्रिंसिपल, एस.डी. डिग्री कालेज, टांडा बादली, रामपुर) ने सेमिनार का दावतनामा दिया, जिसका शीर्षक था 'रुहेलखण्ड के ग़ैर मुस्लिम शायर और अदीब'। मुझे भी इस सेमिनार में मक़ाला पढ़ने का हुक्म दिया गया था। लिहाज़ा मक़ाला लिखने का ज़ह्न बनाया तो ख़याल पैदा हुआ कि शह्रे-जिगर और दयारे-कैफ़ो-क़मर में भी तो हिन्दू शायरों ने उर्दू के फ़रोग़ के लिए काफ़ी ख़िदमात अंजाम दी हैं, क्या ही अच्छा हो अगर इन बिखरे हुए मोतियों को एक कड़ी में पिरो दिया जाये। लिहाज़ा काम शुरू किया और एक माह की मुख़्तसर मुद्दत में यह किताब तरतीब दे कर आपके हवाले की जा रही है। इस किताब में 55 शायरों का तज़्किरा

है, जिनमें दो ईसाई हैं, इसी वजह से इस तज़्किरे के नाम में हिन्दू की जगह ग़ैर मुस्लिम लिखा गया है।

मैं यह एतराफ़ करना भी ज़रूरी समझता हूँ कि अपनी मसरूफ़ियत के सबब इस किताब पर इतनी मेहनत व कोशिश नहीं कर सका, जैसा कि इसका हक़ था। पहले तो यह ख़याल था कि इस किताब में शायरों के साथ-साथ उर्दू पत्रकारों एवं गद्य लेखकों को भी शामिल किया जाए। चूंकि अगर सिर्फ़ पत्रकारिता की ही बात की जाए, तो अहम नाम हैं, जिनके बग़ैर मुरादाबाद की उर्दू पत्रकारिता की तारीख़ मुकम्मल नहीं हो सकती। जैसे- सूफ़ी अंबाप्रसाद, हरनाम स्वरूप, प्रताप किशन आग़ा, श्याम स्वरूप, विशन स्वरूप, परमेश्वर सहाय, मुनिदेव त्यागी और आर. के. पूर्बी वग़ैरह, लेकिन ऐसा हो नहीं सका। बल्कि किताब को सिर्फ़ शायरों तक ही सीमित रखा गया है। जहां तक शायरों का सवाल है, तो इसमें यह दावा तो नहीं किया जा सकता कि कोई शायर छूटा नहीं है, यक़ीनन कई शायर अनभिज्ञता के कारण इसमें शामिल होने से रह गए होंगे। मेरे ज़ख़ीरे में जो किताबें थीं उनमें इस शीर्षक से जो कुछ मिला उसे किताब की शक्ल में पेश करने की कोशिश की है।

इत्मीनान की बात यह है कि इस महत्वपूर्ण शीर्षक पर कम से कम एक ख़ाका तो तैयार हो गया, जिसको बुनियाद बनाकर एक बड़ा शोध कार्य किया जा सकता है। क्योंकि आज भी अच्छी ख़ासी सामग्री विभिन्न लाइब्रेरियों में महफ़ूज़ है। ज़रूरत है एक ऐसे शख़्स की जो इस शीर्षक पर शोधकार्य कर सके।

इस तज़्किरे की तरतीब में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा गया है-

(1) सिर्फ़ उन्हीं शायरों को शामिल किया गया है, जिनका ज़िक्र किसी किताब या मैगज़ीन में मिल सका। हां, अगर शायर के तअल्लुक़ से कोई और बात मालूम हुई है तो उसे भी इसमें शामिल कर दिया गया है।

(2) चूंकि तमाम शायरों की जन्म और स्वर्गवास की तिथि मालूम नहीं हो सकी, इसलिए उन्हें उर्दू वर्णमाला के क्रम में रखा गया है।

(3) इस किताब को दो हिस्सों में बांटा गया है। पहले हिस्से 'उजाले यादों के' में वो शायर शामिल हैं, जो दुनिया से कूच कर चुके हैं। जबकि दूसरे हिस्से 'रोशन चिराग़' में उन शायरों को शामिल किया गया है, जो आज भी उरूसे-सुख़न की ज़ुल्फ़ें संवारने यानी साहित्य सृजन में मशग़ूल हैं। लेकिन इन शायरों का क्रम वर्णमाला के बजाय उनकी जन्मतिथि के अनुसार रखा गया है।

यह महज़ अल्लाह का करम है कि उसने व्यस्तता के बावजूद वक़्त में बरकत दी और यह किताब तैयार होकर आपके हाथों में आ सकी और यह भी उसी का करम है कि मुझे ऐसे मुख़लिस और मेहरबान दास्तों का साथ और बुज़ुर्गों की दुआएं मिल सकीं, जिनकी वजह से यह काम आसान हुआ। कहा जाता है कि जो बन्दों का शुक्रिया अदा नहीं करता, वह अल्लाह का भी शुक्रगुज़ार नहीं हो सकता। लिहाज़ा सबसे पहले अपने उस्ताद डा. साबिर संभली साहब (पूर्व विभागाध्यक्ष उर्दू, महाराजा हरिश्चन्द्र डिग्री कालिज) का शुक्रगुज़ार हूं कि उन्होंने इस तज़्किरे को तारीख़ी नाम 'तज़्किरा-ए-ज़ेबे-चमन' (1437 हि.) दिया। मेरे मार्गदर्शक और हितैषी डॉ. आरिफ़ हसन खां (पूर्व विभागाध्यक्ष उर्दू, हिन्दू कालिज, मुरादाबाद) ने दुआओं से नवाज़ा, मेरे बड़े हमदर्द अंतराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त जनाब मंसूर उस्मानी साहब ने न सिर्फ़ हौसला अफ़ज़ाई की, बल्कि मुहब्बत भरे जज़्बात भी क़लमबंद किए। शहर के बुजुर्ग शायर जनाब सतीश कुमार गुप्ता 'फ़िगार' मुरादाबादी ने मेरे लिए बड़ी तकलीफ़ उठाई। कई मर्तबा मेरे पास तशरीफ़ लाये और अपनी मुहब्बतों का इज़हार एक मज़मून की शक्ल में किया। श्री जगन्नाथ अग्रवाल (से.नि. प्रबंधक, पंजाब नेशनल बैंक) ने भगवतसरन 'मुमताज़' के कुछ हालात मुहैया कराए और श्री कांतिप्रसाद जी (निवासी चौरासी

घंटा) ने धर्मानन्द 'ज़ख़्मी' और कैलाशचन्द्र 'शैदा' के बारे में जानकारी मुहैया कराई। इन हज़रात के अलावा जनाब ज़िया ज़मीर ने अंकित गुप्ता अंक से मुलाक़ात कराई। डा. सैयद अज़ीम उल हसन ने इस किताब में शामिल कलाम की प्रूफ़रीडिंग की, ज़ाहिद परवेज़ साहब ने देवनागरी लिपि में टाइपिंग की, डा. मुजाहिद फ़राज़ साहब ने दुआओं से नवाज़ा, डा. अजय अनुपम साहब ने मुरादाबाद के अहम शायर और स्वतंत्रता सेनानी श्री भगवतसरन मुमताज़ की पांडुलिपि से उनकी ग़ज़लें उपलब्ध कराईं। श्री राजीव हरि ने अपने पिता श्री कैलाशचन्द शैदा का कुछ कलाम और हालात मुहैया कराये। इंजीनियर फ़रहत अली ख़ां ने कई तज़्किरे मुहैया कराए। रोलेंड लारेंस का कलाम और फोटो कामरेड मुशर्रफ़ अली साहब के ज़रिये हासिल हुआ। जनाब महमूद अली ने भी हस्बे-ज़रूरत सहयोग दिया। डा. शायर उल्लाह ख़ां साहब ने इंतिहाई अहम तज़्किरा 'तज़्किरा शोअरा-ए-रुहेलखंड' का नुस्ख़ा दिया, जो इस तज़्किरे का बुनियादी स्रोत है। अगर इन हज़रात का सहयोग नहीं मिलता तो यह किताब मुकम्मल नहीं हो सकती थी। लिहाज़ा इन तमाम हज़रात का दिल की गहराइयों से शुक्रगुज़ार हूं।

डा. कृष्णकुमार 'नाज़' साहब का ख़ासतौर पर शुक्रिया अदा करना मेरा फ़र्ज़ है, लेकिन मेरे पास अल्फ़ाज़ नहीं हैं। अगर वो तवज्जो नहीं देते और उनका सहयोग और मुहब्बतें नहीं मिलतीं तो शायद यह किताब देवनागरी लिपि में आप तक नहीं पहुंच पाती।

जनाब अंजुम अली साहब और जनाब अकमल अली साहब का शुक्रिया किस तरह अदा किया जाए कि अगर ये साथ नहीं देते और कारोबारी मसरूफ़ियत से मोहलत नहीं मिलती तो मैं यह काम नहीं हो सकता था।

मेरी अहलिया उर्फ़िया वारसी जिनका कभी ख़ामोश तो कभी अमली तआवुन मुझे तमाम अदबी सरगर्मियों में हासिल रहता है। हमेशा मेरी मददगार रहती हैं। अल्लाह तआला उन्हें जज़ा-ए-ख़ैर अता फ़रमाये। मेरे

बच्चों- अली सअद, वलिया और हादिया की मासूम शरारतें जब मेरी यकसूई (एकाग्रता) में ख़लल डालती हैं तो दिल से दुआ निकलती है कि अल्लाह तआला उनको भी इल्म की दौलत से मालामाल करे और वे भी इसी तरह बिना भेदभाव के साहित्य-सेवा करते रहें।

आख़िर में एक मर्तबा फिर अर्ज़ करता हूं कि यह काम उर्दू अदब के एक मामूली तालिब इल्म की छोटी-सी कोशिश है और मेरे सीमित ज्ञान में इस शीर्षक पर देवनागरी लिपि में यह पहला कार्य है। लिहाज़ा कुछ न कुछ कमियां यक़ीनन रह गई होंगी। उम्मीद है दर गुज़र फ़रमायेंगे और शुक्रगुज़ार रहूंगा अगर उस ग़लती, कमी या कोताही की निशानदही फ़रमा दें, ताकि आइंदा एडीशन में उसको दूर किया जा सके। ध्यान रहे कि यह तज़्किरा है और इसका संबंध शोध से है और शोध के दरवाज़े कभी बंद नहीं होते।

- डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन

अनुक्रम

रोशन चिराग़–

उजाले यादों के

ऐसे शायर जो ख़ुद नहीं रहे,
लेकिन उनका ज़िक्र आज भी बाक़ी है।



‘असर’ छब्बा लाल

मुरादाबाद में मिर्ज़ा दाग़ देहलवी के कई शार्गिद थे। उनमें एक नाम मुंशी छब्बा लाल का भी शामिल है जिनका तख़ल्लुस ‘असर’ था। शायां बरेलवी ने गुलदस्ता ‘नशोनुमा’ सितम्बर 1904 ई. के हवाले से ये दो शेर लिखे हैं –

देखेंगे गर इधर को ग़ज़ब की अदा से आप
ले लेंगे मेरी जान को पहले क़ज़ा से आप
मरने में शक मरीज़े-जुदाई के था न कुछ
अच्छा हुआ कि आ गये पहले क़ज़ा से आप

– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड-4, पृ. 3252)

‘अफ़सोस’ मुरादाबादी

नाम पंडित रामकुमार और तख़ल्लुस ‘अफ़सोस’। वतन की निस्बत से नाम के साथ मुरादाबादी लिखते थे। शेरो-शायरी का अच्छा ज़ौक़ रखते थे। मुरादाबाद के मशहूर शायर और ‘ग़ालिब’ के शागिर्द नवाब महमूद अख़्तर रिज़वान मुरादाबादी के शागिर्द थे। कलाम दस्तयाब नहीं हो सका।

– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड-4, पृ. 3383)

‘इन्द्रमन’ लाला इन्द्रमन महाजन

लाला इन्द्रमन क़ौम के वैश्य महाजन थे, मुरादाबाद के रहने वाले थे। शेरो-शायरी का अच्छा ज़ौक़ रखते थे। शायरी में मुंशी टेकचन्द ‘बहार’ के शागिर्द थे। पुख़्ता ज़ह्न के मज़हबी इंसान थे। धार्मिक ज्ञान पर मज़बूत पकड़ थी। लिहाज़ा मज़हबी मुनाज़िरों (वाद-विवाद) में बड़ी

शोहरत रखते थे और बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते थे। अपने मज़हब की किताबों और शास्त्रों के अलावा इस्लाम और ईसाइयत की किताबों का भी मुताअला ख़ूब था। 1877 ई. में स्वर्गवास हुआ।

-(शोअरा-ए-हुनूद)

अता उल्लाह पालवी लिखते हैं- ''वो जिस तरह संस्कृत और हिन्दी के आलिम थे वैसे ही अरबी व फ़ारसी के भी माहिर थे। उर्दू तो ख़ैर उनके घर की लोंडी थी ही, मज़हबी उलूम और कुतुब शास्त्र पर क़ाबिले रश्क उबूर हासिल था। अपने अहद के ज़बरदस्त मुनाज़िर भी रहे ... इन्द्रमन का यह ख़ास शग़फ़ था कि वह तहरीरी और तक़रीरी दोनों तरह बहस व जदाल में हिस्सा लेने में पेश-पेश रहते थे।''

-(उर्दू के हिन्दू मसनवीनिगार अज़् अता उल्लाह पालवी, पृ. 78-79)

उनकी अक्सर किताबें मज़हबी नोइयत की हैं, जिनमें मुनाज़राना (वाद-विवाद) अन्दाज़् इख़्तियार किया गया है।

कुछ ख़ास किताबों के नाम इस तरह हैं- (1) तोहफ़ा-ए-इस्लाम (2) अबताल उल मुख़ासमीन (3) हमला-ए-हिन्द (4) सौलते-हिन्द (5) समसामे-हिन्द (6) इमादे-हिन्द (7) पादाशे-इस्लाम (8) उसूले-दीने-अहमद, वग़ैरा हैं ।

'इन्द्रमन' ने 'उसूले-दीने-अहमद' के नाम से एक मसनवी (दीर्घ-नज़्म) लिखी, जिसमें इल्म का दरिया बहा दिया है। नमूने के तौर पर ख़ाक (मिट्टी) की तारीफ़ मुलाहिज़ा कीजिये-

जो मुश्ते ख़ाके-रहे परमात्मा हैं
समझते ख़ाक ही को कीमिया हैं

जो हैं वो ख़ाकसारे-हज़रते-पाक
हुए इस वास्ते आलूदा-ए-ख़ाक

जो होवे ख़ाक बीजे़-कू-ए दिलदार
उसे है ख़ाक से हर दम सरोकार

जिसे ज़र ख़ाक से हासिल हुआ है
बने ख़ाक उसके हक़ में कीमिया है

न हरगिज़ ख़ाकसारों से हो बदज़न
कि होवे ख़ाक से आईना रोशन

न अस्लन ख़ाक पर कर तअन, बेबाक
कि दुनिया अव्वलो-आख़िर में है ख़ाक

ये बाइस ख़ाक के हैं बाग़ो-बुस्तां
बदौलत ख़ाक के हैं काख़ो-एवां

ज़रे-गुल ख़ाक से आता है बैरूं
दबा है ख़ाक ही में गंजे क़ारूं

अयां हो ख़ाक से लाले-बदख़्शां
हो ज़ाहिर ख़ाक से याक़ूतो-रम्मां

सुपुर्दे-ख़ाक होते हैं ख़ज़ाइन
इसी में दफ़्न रहते हैं दफ़ाइन

हुआ है क़ुदसियों का जाके अफ़सर
रखा है जिसने अपना ख़ाक पर सर

बज़ाहिर देख ले ऐ हक़ फ़रामोश
कि दुनिया ने किया है ख़ाक से जोश

तुफ़ैले-ख़ाक है रूईदगी सब
बदौलत इसके हैं चश्मे-लबालब

तू ख़ुद भी ख़ाक है ऐ ख़ाक बरसर
ग़ुरूर इतना न मुश्ते-ख़ाक पर कर

ग़रज है ख़ाक ही से सब जुज़ो-कुल
समझ हर शय इसी से बे-तअम्मुल

'बिस्मिल' मुरादाबादी

वासुदेव सहाय नाम और बिस्मिल तख़ल्लुस था। काशिफ़ी मुरादाबादी के शागिर्द थे। तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड ने सिर्फ़ एक शेर लिखा है, जो बिस्मिल ने 15 अगस्त 1947 ई. को मुनअक़िद होने वाले मुशायरे में पढ़ा था। इससे यह भी अन्दाज़ा होता है कि वह आज़ादी के दीवानों में शामिल रहे होंगे। मुलाहिज़ा कीजिए शेर-

जो कल जेलों में जाते थे, वो अब जेलों के मालिक हैं
ख़ुदाया तूने हमको आज अपनी शान दिखला दी

- (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड-4, पृ. 2742)

मुरादाबाद के बुज़ुर्ग शायर जनाब अख़्तर आज़िम का बयान है कि 'बिस्मिल' मंडी बांस में रहते थे ।

'भूकन' मुरादाबादी

भूकनसरन नाम और भूकन तख़ल्लुस। शेरो-शायरी के दिलदादा थे। शेरगोई का भी शौक़ था। शौकत मुरादाबादी के शागिर्द थे और भट्टी मुहल्ले में रहते थे। डा. धर्मेन्द्रनाथ ने माहाना हयाते-उर्दू जून 1917 ई. के हवाले से इनका निम्नलिखित नातिया शेर नक़्ल किया है-

तुझसा दुनिया में न मैंने कोई यकता देखा
ऐसा अल्लाह के बन्दों में न बन्दा देखा

- (हमारे रसूल, पृ. 294)

'बेताब' मुरादाबादी

नाम किशन कुमार और तख़ल्लुस 'बेताब' था। रिज़वान मुरादाबादी के शागिर्द थे। कलाम उपलब्ध नहीं हो सका।

- (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड-4, पृ. 3384)

'बेदिल' मुरादाबादी

मंगलसरन नाम और 'बेदिल' तख़ल्लुस था। म्युनिसिपल बोर्ड मुरादाबाद में एकाउंटेंट थे । काशिफ़ी मुरादाबादी के शागिर्द थे। साहिबे-दीवान शायर थे। उनका दीवान 'गुल सद बर्ग' के नाम से 1960 ई. में प्रकाशित हुआ था। नमूना-ए-कलाम मुलाहिज़ा फ़रमायें-

फ़ना होकर ग़मे-हस्ती को ऐशे-जावेदां करलूं
मदद! ऐ ज़ौक़े आज़ादी, क़फ़स को आशियां कर लूं
सरे-गर्दूं नज़र आती है 'बेदिल' जब तजल्ली तो
यही कहता है दिल उसको चिराग़े-आशियां कर लूं

- (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड-4, पृ. 2743)

बहोरन सिंह वर्मा 'प्रवासी'

श्री बहोरन सिंह वर्मा 'प्रवासी' के वालिद का नाम श्री सिपाही सिंह वर्मा था। प्रवासी 20 दिसंबर 1921 को मुरादाबाद ज़िले की तहसील सिरसी में पैदा हुए। नौकरी के लिए मुरादाबाद आए और यहीं के होकर रह गए। (के.जी.के. कालेज के पास रामतलैया में गौड़ बिल्डिंग में रहते थे।) एक सरकारी स्कूल में अध्यापक थे, जहां से प्रधानाध्यापक के पद से सेवानिवृत्त हुए और एक नवंबर 2005 को स्वर्गवास हुआ।

–हिंदी ग़ज़ल और कृष्णबिहारी 'नूर' : डा. कृष्णकुमार 'नाज़', पृ. 145

प्रवासी जी उर्दू ग़ज़ल के साथ-साथ हिंदी की तमाम विधाओं पर भी पकड़ रखते थे, लिहाज़ा दोनों ज़बानों में शायरी करते थे। इनका मजमूए-कलाम 'सीपज' देवनागरी लिपि में इनकी ज़िंदगी में ही सन् 2000 में हिंदी साहित्य सदन मुरादाबाद से प्रकाशित हुआ था।

ग़ज़ल

बुलबुल हो नालाकश न मेरे दिल के सामने
शर्मिंदा होगी मद्दे-मुक़ाबिल के सामने
कुछ इस अदा से तेग़ संभाले हुए थे वो
गर्दन ब-शौक़ झुक गई क़ातिल के सामने
दीवानगी में अक़्ल भी आंखें चुरा गई
मुझको तलाशे-राह है मंज़िल के सामने
चल दूर हो नज़र से मेरी बेवफ़ा नज़र
बदनाम कर दिया मुझे महफ़िल के सामने
मायूसियां न पूछिए उस बदनसीब की
तूफ़ां में फंस गया हो जो साहिल के सामने
पासे-विक़ार गर हो 'प्रवासी' तुझे ज़रा
कहना न बात अक़्ल की जाहिल के सामने

+ + + – सीपज से

जमाले-यार की रंगीनियों में
निगाहे-शौक़ डूबी जा रही है

+ + +

ख़िज़ां का ख़ौफ़ कैसा देश पर क़ुर्बान हो जाओ
कोई इंसां नहीं आया है दुनिया में अमर होकर
नहीं सानी तुम्हारा आज तक पैदा हुआ कोई
दिखाई राह दुनिया को तुम्हीं ने राहबर होकर

+ + +

ये कू-ए-इश्क़ है नादां संभलकर हर क़दम रखना
कहीं ऐसा न हो आग़ाज़ ही अंजाम हो जाए

माना तुम्हारी यादें जीने न देंगी मुझको
तड़पाएगी तुम्हें भी लेकिन मेरी जुदाई

इश्क़ के याद हैं न मानी तक
भूल बैठा हूं वो कहानी तक

राह में उसकी हज़ारों लोग सजदे में झुके
दर्द में जिसके जहां का दर्द शामिल हो गया

– हिंदी ग़ज़ल और कृष्णबिहारी 'नूर' : डा. कृष्णकुमार 'नाज़', पृ. 148-149

पीतम राय

पीतम राय का तख़ल्लुस भी पीतम था। राजा किशन कुमार 'वक़ार' के पेशकार थे । राजा साहब की इल्मी व अदबी सरगर्मियों में मददगार रहते थे। आला अदबी ज़ौक़ रखते थे। मुंशी अनवार हुसैन तसलीम

सहसवानी के शागिर्द थे। नज़्म और नस्र (पद्य व गद्य) दोनों में महारत हासिल थी। उनके अदबी कारनामों की कोई तफ़सील उपलब्ध नहीं हो सकी, अलबत्ता उनकी तरतीब दी हुई एक किताब 'मदीहा-ए-वक़ार' मेरे पुस्तकालय में मौजूद है, जिसमें किशनकुमार 'वक़ार' के जश्ने-ताजपोशी के वक़्त विभिन्न शायरों के ज़रिये कहे गये क़सीदे जमा किये गये हैं। यह किताब 116 पृष्ठ की है, जो 1891 ई. में प्रकाशित हुई थी। पीतम राय का कोई शेर उपलब्ध नहीं हो सका। अलबत्ता उनकी नस्र का नमूना उक्त संदर्भित पुस्तक से प्रस्तुत है-

"जो अल्फ़ाज़ सताईशो-नयाईश में आफ़रीनन्द-ए-हर दो-आलम के आयें वो महमूद हैं। जो हुरूफ़ तारीफ़ में उसके बरगुज़ीदों की सूरत दिखायें वो सतूदा हैं। ख़ैल नूरी व करदानारी व फ़िरक़ा ख़ाकी में बेहदो-एहसार अफ़ज़ल व अजमल व अकमल गुज़रे। सौ हज़ार में से एक भी वादी कुना ख़ालिक़ को तय न कर सका, बल्कि नारसाई ज़ह्न का मुअत्तरिफ़ हुआ। इंसाफ़ शर्त मुझसा इंसान ज़ईफ़ुलबुनयान कि न बा व ता से आशनाई रखता है, न हा व ख़ा से शनासाई, उसकी हम्दो-सना में अगर तहरीर को वुसअत दे या तक़रीर से काम ले, यह हरज़ादराई में दाख़िल हो और वह बेहूदा सराई में शामिल हो। अब्दियत बसद इज्ज़ व हज़ार इनकिसार यूं नफ़्स गुज़ार है कि इस बज़्म में ख़ामोशी गोयाई से आला व बाला है। बहर पहलू-ए-सुख़न इसी में बोलबाला है। अम्मा बआद ख़ाकपाये नासिराने-आली मुक़ाम व शायराने-शीरीं कलाम कमतरीन काफ़्फ़ा अनाम पीतम राय नाम मुलाज़िम सरकार अबदे क़रार दरिया दिल, अब्रे करम रश्क क़आनी व हातिम राजा किशन कुमार मुतख़ल्लुस बावक़ार सल्लमाहू।"

- (मदीहा-ए-वक़ार, पृ. 2-3)

‘तमकीन’ मुरादाबादी

गुरु स्वरूप नाम और ‘तमकीन’ तख़ल्लुस था। काशिफ़ी मुरादाबादी के शागिर्द थे। मिशन कालिज मुरादाबाद में पढ़ाते थे। सिर्फ़ एक शेर मिल सका जो प्रस्तुत है-

हो जो तकलीफ़ में जाने वही राहत का मज़ा
क्या वो जाने जो हक़ीक़त से ख़बरदार न हो

- (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड-4, पृ. 2743)

‘चन्द्र’ मुरादाबादी

सुरेशचन्द्र नाम और चन्द्र तख़ल्लुस था। वालिद का नाम पंडित गंगा सहाय शर्मा । मुरादाबाद के मुहल्ला किसरौल के रहने वाले थे। ‘अब्र’ एहसनी के चहेते शागिर्द थे। इरफ़ान अब्बासी ने अपनी किताब ‘आप थे’ में इनका ज़िक्र इस तरह किया है-

‘‘मुतनासिब क़ामत, छरेरा बदन, दीदाज़ेब ख़तो ख़ाल, शगुफ़्ता पेशानी, घने अबरू, मुता वस्सुत नर्म व ज़हीन आँखें, छोटी गोल पांसे वाली नाक, पतला चेहरा, रुख़सारों की हड्डियां उभरी, क़रीने से तराशी हुई हल्की मूंछे, मुतबस्सुम दहाना, सर पर अंग्रेज़ी तराश के बाल, जिस्म पर साफ़ सुथरी पोशाक़, मिज़ाजन ख़लीक़ व मुतवाज़े, मतीन व संजीदा, शरीफ़ उल नफ़्स व मुनकसिर, दोस्तों के दोस्त, रफ़ीक़ों के रफ़ीक़, शेरो-अदब के शाईक़ और शायर। यह थे सुरेशचन्द्र शर्मा ‘चन्द्र’ मुरादाबादी।

स्वर्गीय पंडित गंगा सहाय शर्मा के घर 25 जुलाई 1935 ई. को मुरादाबाद में पैदा हुए। यहीं तालीमो-तर्बियत हासिल करने के बाद रेलवेज़ में मुलाज़िमत कर ली और लोकोशेड मुरादाबाद के दफ़्तर में ख़िदमाते-मनसबी अंजाम देते रहे।

'चन्द्र' ख़ुश कलाम और ज़हीन शायर थे। मुशायरों के हंगामों से दूर, नामो–नमूद की फ़िक्र से बेनियाज़, तसकीने–ज़ौक़ के लिए शेर कहते थे और दोस्तों की निजी महफ़िलों में शेर पढ़कर दाद पाते थे। अपना दीवान ख़ुद तरतीब दिया था, लेकिन वह प्रकाशित न हो सका। आख़िर उम्र में चन्द हादसात ने दिल शिकस्ता कर दिया था और वह बुझ–से गये थे। तक़रीबन पचास साल की उम्र में 8 अप्रैल 1984 को मौत से हमकिनार हुए।''

– ('आप थे', पृ. 108)

जो कलाम उपलब्ध हो सका वह पेश किया जा रहा है–

आरज़ू मुसर्रत की बख़्शती है लाखों ग़म
अब न आयेंगे हरगिज़ हम ख़ुशी के धोखे में

\+ + +

हर एक हाथ में ख़ंजर दिखाई देता है
हर एक शख़्स सिकंदर दिखाई देता है
शिकस्ता पा हो मगर चन्द गाम और सही
वो देखो मील का पत्थर दिखाई देता है
न कोई ग़म, न ख़ुशी ज़िन्दगी से वाबस्ता
जुनूं तो होश से बेह्तर दिखाई देता है
वो एक साया है, मुझसे मगर क़रीब नहीं
हिसारे ज़ीस्त से बाहर दिखाई देता है
उफ़क़ पे दूर, बहुत दूर एक हाला–सा
हमें तो 'चन्द्र' अब अक्सर दिखाई देता है

\+ + +

जो लोग सलीबों की तरफ़ आये हुए हैं
लगता है किसी शख़्स के बहकाये हुए हैं
हम लोग तो ज़िन्दा हैं मगर मुर्दों की मानिन्द
रूहों से कफ़न याद के लिपटाये हुए हैं

कैसे तेरी आवाज़ में आवाज़ मिला दें
हम लोग कि पत्थर की ज़बां पाये हुए हैं
ऐ शहर के हंगामो! हमें भी तो समेटो
तनहाई से हम लोग भी घबराये हुए हैं
तस्वीर में तस्वीर-सा कुछ भी नहीं बाक़ी
तस्वीर को हम रंग से चमकाये हुए हैं
हर रोज़ उगायेंगे ज़मीं से नया सूरज
हम 'चन्द्र' उजालों की क़सम खाये हुए हैं

\+ + +

इक मोड़ पर जब आप भी रस्ता बदल गये
ठोकर तो हमने खाई थी, लेकिन संभल गये
कितनी कड़ी है धूप गिरानी की इन दिनों
पत्थर का जिस्म होते हुए भी पिघल गये
धरती तक आ सकी न किरन आफ़ताब की
सूरज की रोशनी को अंधेरे निगल गये
अल्फ़ाज़ का कमाल है, अल्फ़ाज़ का कमाल
हालात मेरे उनके फ़साने में ढल गये
अब तक तो दूसरों के लिए सोचते रहे
ऐ 'चन्द्र' अब हमारे इरादे बदल गये

\+++

खो गये भीड़ में सब हाथ बटाने वाले
रह गये सिर्फ़ हमीं बोझ उठाने वाले
साथ चलने के लिए कोई भी तैयार नहीं
दूर से कितने मिले राह दिखाने वाले
अपने किरदार को ख़ुद भूल गये हैं शायद
मेरे किरदार को आईना दिखाने वाले
हम ही होते हैं कोई और नहीं होते हैं
अपने हाथों की लकीरों के बनाने वाले

दास्तां कोई नई याद नहीं है तुझको
ये तो मेरी ही कहानी है सुनाने वाले

'दिग्गज' मुरादाबादी

'अब्र' एहसनी गिन्नौरी के शागिर्दों में मुरादाबाद के कई शायर शामिल थे। उनमें से एक नाम चन्द्रप्रकाश 'दिग्गज' का भी है। दिग्गज साहब मुहल्ला कटघर के होली का मैदान में रहते थे । उर्दू अच्छी तरह लिखना-पढ़ना जानते थे। मुक़ामी तहसीली स्कूल में हेड मास्टर के ओह्दे से रिटायर हुए थे। डा. कृष्णकुमार 'नाज़' का बयान है कि बच्चों के अदब में ख़ास दिलचस्पी थी, लिहाज़ा बच्चों के लिए ख़ूब लिखते थे। 'शहाब' मुरादाबादी का बयान है कि बच्चों के लिए उनकी नज़्में 'घड़ी' और 'सर्कस' बहुत पसन्द की जाती थीं। उर्दू ज़बान और इल्मे-उरूज़ के साथ-साथ हिन्दी ज़बान और उसके छंदोविधान पर उबूर हासिल था। शायद 1996 ई. में स्वर्गवास हुआ। अफ़सोस कि उनका उर्दू कलाम दस्तयाब नहीं हो सका। अलबत्ता डा. अजय 'अनुपम' जी द्वारा हिन्दी की एक ग़ज़ल हासिल हुई, जिसका एक शेर दर्ज है-

बुद्ध-ईसा और गांधी सबके हैं आदर्श मेरे
मैं किसी का क़त्ल कर दूँ, क़ातिलों से प्यार कर लूं?

दत्तराम 'दत्त'

पंडित दत्तराम का तख़ल्लुस 'दत्त' और वालिद का नाम भवानीदास था। अमीर मीनाई का बयान है कि उनकी पैदाइश मुरादाबाद में हुई, मगर वह जब चार बरस के थे तो उनके वालिद उन्हें रियासत रामपुर ले गये थे। लिहाज़ा उनकी तालीमो-तरबियत रामपुर में हुई। शायरी में

बरेली निवासी ख़ुशहाल राय 'ख़ुशहाल' कबशीर के शागिर्द थे। दरबार रामपुर में मुलाज़िम थे। अपने अफ़सरान और बराबर के लोगों में भी इज़्ज़त और तौक़ीर की निगाह से देखे जाते थे। अमीर मीनाई ने तज़्किरे की तालीफ़ के वक़्त उनकी उम्र इकसठ बरस लिखी है। जबकि इंतख़ाबे-यादगार की सन तालीफ़ 1880 ई. है। लिहाज़ा दत्तराम की पैदाइश 1827 ई. रही होगी।

– (इंतख़ाबे-यादगार, पृ. 132)

दास मुरादाबादी

नरोत्तमदास गुप्ता नाम और 'दास' तख़ल्लुस था। काशिफ़ी मुरादाबादी के शागिर्द थे। मुरादाबाद के बाज़ार शाही (वर्तमान में बर्तन बाज़ार) में रहते थे। अक्सर अदबी नशिस्तों में शिरकत करते थे।

– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड-4, पृ. 2744)

नरोत्तम 'दास' का कलाम अख़बारों और पत्रिकाओं में प्रकाशित होता रहता था। 1930 ई. में मुरादाबाद में एक तरही इनामी मुशायरा मुनअक़िद हुआ था जिसमें नरोत्तम दास ने दर्ज ज़ैल कलाम पढ़ा था, जिसके हर हर मिसरे से तसव्वुफ़ का रंग अयां है। मुलाहिज़ा फ़रमाइये–

बहरे-ज़ुख़्ख़ार न हो वादी-ओ-कुहसार न हो
दश्तो-गुलज़ार न हो ख़लक़ते-जाँदार न हो
अर्ज़ और अर्ज़ पे ये चर्ख़े-बद अतवार न हो
नेस्ती सूरते-हस्ती में नमूदार न हो
ज़ौफ़शां कुन से अगर शोला-ए-अनवार न हो

है यही इश्क़े-हक़ीक़ी का हक़ीक़त में पता
ख़ुद-ब-ख़ुद आने लगे लब पे अनलहक़ की सदा

इश्क़े-मंसूर से ये राज़ हक़ीक़त का खुला
बेख़ुदे इश्क़ हो इतना कि तू बन जाये ख़ुदा
इश्क़ वो इश्क़ नहीं जिसका समर, दार न हो

मीठा-मीठा-सा मेरे दर्द जो पहलू में उठा
याद ताज़ा हुई दिल माही-ए-बेआब हुआ
शौक़े-दीदार ने घर में मुझे रहने न दिया
अलमदद ज़ब्त के रखना है तुझी को पर्दा
बेख़ुदी मेरी कहीं काशिफ़े-असरार न हो

हासिले-कोताह निगाही है सदा नाकामी
रंजो-अफ़सोस का सर चश्मा है कोताह नज़री
पांव फ़ैलाये ज़्यादा न रिदा से अपनी
'दास' इंसां हो जो मरहूने मआल अन्देशी
उसका अंजाम निदामत का सज़ावार न हो

इनका यह कलाम बहुत पसंद किया गया और उन्हें सिलवर मैडल हासिल हुआ। क़ाज़ी अब्दुल अली आबिद ने लिखा है कि इस कलाम से उनका इस्तग़राक़े-फ़न (साहित्य-साधना) और रंगे-तौहीद (एक ईश्वरवादी सोच) ज़ाहिर होता है।
-(तहरीके-आज़ादी और मुख़बिरे-आलम, इमदाद साबरी, पृ. 222)

ज़ौक़ीराम 'ज़ौक़ी'

ज़ौक़ीराम रिन्द मशरब थे, इत्र फ़रोशी का काम करते थे। तज़्किरा नवीसों ने लिखा है कि बेनवाओं यानी ग़रीबों और मुफ़लिसों के हाल में कूचा व बाज़ार में घूमते फ़िरते थे। ख़ासतौर पर होली के दिनों में गली मुहल्लों में ज़ोर-ज़ोर से शेर पढ़ते फ़िरते थे। लेकिन जिस तरह

तज़्किरा निगारों ने उनका ज़िक्र किया है, उससे मालूम होता है कि शायरी में अपना मुक़ाम रखते थे। नवाब मुस्तफ़ा ख़ान 'शेफ़्ता' ने अपने तज़्किरे 'गुलशने-बेख़ार' मे लिखा है-

मिलने से तसव्वुर में कुछ कम न मज़ा देखा
गर वो न हुआ उसकी तस्वीर है और मैं हूँ

शेफ़्ता की फ़ारसी ज़बान की किताब 'गुलशने-बेख़ार' में ज़ौक़ी की बाबत जो लिखा गया है, उसका तर्जुमा (अनुवाद) इस प्रकार है-

''**तर्जुमा :** ज़ौक़ी तख़ल्लुस और नाम ज़ौक़ीराम है। मुरादाबाद का रहने वाला है। ज़की मेहंदी अली का शागिर्द है। इत्र फ़रोशी से बसर औक़ात (वक़्त गुज़ारना) करता है। कहते हैं कि होली के दिनों में जो हिन्दुस्तान के लोगों में मौज मस्ती का ज़माना है, ग़ुरबा (ग़रीबों) के तबक़े की तक़लीद (अनुकरण) में गली बाज़ार में अशआर पढ़ता है।''

- (गुलशने-बेख़ार, पृ. 174 मय तर्जुमा हमीदा ख़ातून)

ज़्यादातर तज़्किरानिगारों ने एक-सा बयान किया। अलबत्ता स्प्रिंगर के बयान से यह भी साबित होता है कि ज़ौक़ी ग़ज़लों के साथ-साथ ज़्यादातर होली के मौक़े पर नज़्में भी कहा करते थे।

लगभग तमाम ही तज़्किरानिगारों ने 'ज़ौक़ी' का उपरोक्त शेर नक़्ल किया है। अलबत्ता शायां बरेलवी ने लाला श्रीराम के तज़्किरा-ए-ख़ुम ख़ाना-ए-जावेद के हवाले से निम्नलिखित शेर नक़्ल किया है-

यूं रेख़्ता कहने को आलम में हज़ारों हैं
बदनाम पर ऐ 'ज़ौक़ी' एक 'मीर' है और मैं हूं

-(शोअरा-ए-रुहेलखण्ड-4, पृ. 2932, ब-हवाला ख़ुम ख़ाना-ए-जावेद-2)

देवीप्रसाद ‘रब्त’

नाम देवीप्रसाद और तख़ल्लुस ‘रब्त’। वालिद का नाम मुंशी मोहनलाल था। कायस्थ थे। लिहाज़ा शेरो-शायरी का शौक़ विरसे में मिला था। बड़े भाई कन्हैयालाल ‘ज़ब्त’ भी शायर थे। 1880 ई. में अदालत दीवानी ज़िला मुरादाबाद में पेशकार थे। मुरादाबाद के मशहूर शायर शेख़ मेहंदी अली ख़ां ‘ज़की’ के ख़ास शागिर्दों में गिने जाते थे। बड़े ज़हीन और अक़्लमंद थे।

– (तज़करा-ए-शोअरा-ए-हुनूद, पृ. 163)

उपलब्ध कलाम पेश किया जा रहा है-

अजल भी तो नहीं आती बुरा हो सख़्त जानी का
अलम कब तक उठायें यार की ना-मेह्रबानी का
यही हैं लज़्ज़तें तो है यक़ीं क्या-क्या न रोयेंगे
अगर याद आयेगा पीरी में आलम नौजवानी का
नहीं वो शर्मगीं हर उज़्व को दुज़्दीदा तकते हैं
हुआ है इश्क़ उनको आप अपनी ही जवानी का
उठाकर आंख भी हूरों को जन्नत में न देखेंगे
रहा धड़का जो ऐसा ही किसी की बदगुमानी का
न पूछ ऐ ‘रब्त’ हाले दिल ग़ज़ब में जान आई है
बुरा हो इश्क़ का या रब भला हो नौजवानी का

\+ + +

जो मिसरा एक है अशवा तो ग़मज़ा एक मिसरा है
तुम्हारी शाने-महबूबी अजब दिलचस्प मतला है
जहां हैं वो क़सीदा पुर-मज़ामीं हम्दे-बारी का
अज़ल मतला है जिसका और अबद जिसका कि मक़्ता है
मुशाबा है मगर इसमें कहां है ये दिल आवेज़ी
सुरैया क्या है जो कुछ आप का झूमर मुरस्सा है
अदा-ओ-अश्वा, नाज़ो ग़मज़ा हैं ये चार रुक्न इसके
क़दे-मौज़ूने-जानां भी अजब बरजस्ता मिसरा है

उसी के हैं ये सब नक़्शो-निगार ऐ रब्त खोल आंखें
मुसव्विर है वो ममदूहे ज़मां आलम मुरक़्क़ा है

रुबाई

हर तरह से आप तो सतायें क्या ख़ूब
हम शिकवा ज़बान पर न लायें क्या ख़ूब
दें गालियां आप, हम हंसी में टालें
और आप हंसी में रूठ जायें क्या ख़ूब

+ + +

तोड़कर बैठ रहूं कू-ए-दिल आराम में पांव
ताकि फिर उठ न सकें गर्दिशे-अय्याम में पांव
आ गया हिज्र में पहलू से निकलकर बाहर
बेक़रारी ने लगाये दिले-नाकाम में पांव
दर-बदर फिरते हैं अब इश्क़ के हाथों से तबाह
घर से रखते न थे बाहर जो किसी काम में पांव
मैं वो बुलबुल हूं कि जब फस्ले-गुल आई सर पर
फँस गया गर्दिशे-दौरां से मेरा दाम में पांव
रह गई दीद की हेहात तमन्ना ऐ 'रब्त'
सर कटा रखते हैं कू-ए-बुते ख़ुद काम में पांव

- (ख़ुमख़ाना-ए-जावेद-लाला श्रीराम-3, पृ. 362)

रहीफ़/रिफ़अत मुरादाबादी

अता उल्ला पालवी ने अपनी किताब-'उर्दू के हिन्दू मसनवीनिगार' में मुंशी मन्नूलाल रिफ़अत के नाम से निम्नलिखित शेर नक़्ल किये हैं।

- (उर्दू के हिन्दू मस्नवी निगार पृ0126)

जबकि शायां बरेलवी ने मुंशीलाल श्रीवास्तव तख़ल्लुस 'रहीफ़' के नाम से ये शेर नक़्ल किये हैं।

– (शोअरा–ए–रुहेलखण्ड भा. 4, पृ. 2682)

अलबत्ता दोनों तज़्किरानिगार इस बाबत पर मुत्तफ़िक़ हैं कि शायर मुरादाबाद के डिप्टी इंस्पेक्टर आफ़ स्कूल थे और उन्होंने ये शेर अपनी मसनवी 'मुफ़ीद–उद–दहर' में नज़्म किये हैं–

अद्ल से आप को, तही मत कर
अद्ल से आप, कोतही मत कर
रहे–इंसाफ़ सर के बल, सर कर
रहे–इंसाफ़ में, फ़िदा सर कर
अद्ल कर, अद्ल कर न कर बेदाद
मुख़्लिसी है न हश्र में, बेदाद

ये अशआर देख कर अंदाज़ा होता है कि यह मसनवी सन्अते तजनीस में लिखी गई है जो शायर की क़ादिरुलकलामी (वाक्पटुता) और फ़न्नी महारत को ज़ाहिर करती हैं। ग़ालिबन बच्चों को हमजिंस (समानरूपी) अल्फ़ाज़ सिखाने की ग़रज़ से यह मसनवी लिखी गई होगी।

मुंशी मन्नूलाल की किताब 'जुगराफ़िया ज़िला मुरादाबाद' मेरे पास है, जिस पर लिखा हुआ है मुअल्लिफ़ा मुंशी मन्नूलाल मुंसरिम डिप्टी इंस्पेक्टर, ज़िला मुरादाबाद। यह किताब गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबाद से 1874 में छपी थी। इससे यह भी मालूम हुआ कि उस समय मुंशी मन्नूलाल मुरादाबाद के डिप्टी इंस्पेक्टर ऑफ़ स्कूल थे। 51 पृष्ठीय इस किताब में मुरादाबाद के परगनों– अमरोहा, संभल, ठाकुरद्वारा, हसनपुर, बिलारी वग़ैरा की तारीख़ी हैसियत, वहां की आबादी, खेती–बाड़ी, सिंचाई के साधनों और वहां के वाशिंदों के बारे में मुख़्तसर जानकारी दी गई है।

मुंशी बिहारीलाल ‘रम्ज़’

लाला श्रीराम ने लिखा है कि मुंशी बिहारीलाल ‘रम्ज़’ मुरादाबादी अच्छी इल्मी इस्तादाद (क़ाबिलियत) रखते थे। नीज़ यह कि तज़्किरा ‘खुम ख़ाना-ए-जावेद’ जिल्द-2 की तालीफ़ के वक़्त उनको मश्क़े-सुख़न करते हुए बारह-पंद्रह बरस गुज़र चुके थे। मुंशी अमीर उल्लाह ‘तस्लीम’ लखनवी के शागिर्दों में शामिल थे। अच्छी सोच और अच्छे ज़ह्न के आदमी थे और उन्हीं ख़ूबियों की बिना पर अपने साथ के शायरों में भी मुमताज़ समझे जाते थे। 1916 ई. में वफ़ात हुई।

कलाम ज़ैल में पेश किया जा रहा है-

हाय पथरा गईं आंखें मेरी तकते-तकते
दमे-आख़िर भी न वो शोख़ सितमगर आया

\+ + +

कब रूह को फ़ना है बदन की फ़ना के साथ
पिसता कहां है रंग हिना का हिना के साथ
दिल की लगी भड़कती है आहे-रसा के साथ
उठते हैं जैसे आग के शोले हवा के साथ
पाज़ेब की सदा है तुम्हारी कि रोज़े-हश्र
फ़ितने हज़ार उठते हैं आवाज़े-पा के साथ

– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-हुनूद)

\+ + +

‘रम्ज़’ अब रोते हो क्या दिल को जिगर के सामने
क्यों गये सीना सिपर तीरे-नज़र के सामने

\+ + +

इक वार में दो टुकड़े किये दिल के, जिगर के
क़ायल हैं हम उस जौहर-ए-शमशीर नज़र के
देखा न कभी प्यार की नज़रों से इधर हैफ़
मुझको न दिया आप ने साग़र कोई भर के

कमसिन है कहीं सहम न जाये वो दमे-क़त्ल
ऐ जुल्फ़! तू आजा रुख़े क़ातिल पे बिखर के

\+ + +

कलेजे से लगाकर क्यों न रक्खूँ
ये दाग़े-दिल मुझे उसने दिया है

\+ + +

ऐ 'रम्ज़'! तीरे-यार निशानी से कम नहीं
पहलू-ए दिल में रखिए लगाकर जिगर से आप

- (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड-4, पृ. 3356)

'ज़ार' मुरादाबादी

नाम छोटेलाल और तख़ल्लुस 'ज़ार' जनाब तरीक़ कुंदरकवी के शागिर्द थे। कलाम नहीं मिल सका।

- (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड-4, पृ. 3210)

'ज़ख़्मी' मुरादाबादी

नाम धर्मानन्द और तख़ल्लुस 'ज़ख़्मी' था। इनके भतीजे श्री हरिगोपाल भटनागर के मुताबिक़ इनकी वफ़ात 1965-66 ई. में हुई।

क़ौम के कायस्थ भटनागर थे। दीवान के बाज़ार में किराना की दुकान थी। मुहल्ला किसरौल में रानी के फ़ाटक के पास रहते थे। कलाम उपलब्ध नहीं हो सका।

‘शाद’ मुरादाबादी

पण्डित रामप्रसाद मुरादाबाद के एक ब्राह्मण ख़ानदान में पैदा हुए। जनाब ‘शोर’ मुरादाबादी के शागिर्द थे। ज़बानो-बयान के साथ उर्दू साहित्य की सभी विधाओं पर अच्छी पकड़ रखते थे।

शुरू से ही उर्दू शायरों का यह मिज़ाज रहा है कि वह रिवायती तौर पर एक नात ज़रूर कहते हैं और यह सिलसिला आज भी जारी है। लिहाज़ा पण्डित रामप्रसाद ‘शाद’ ने भी एक रिवायती नात कही है। मुलाहिज़ा कीजिए नात का एक शेर-

अल्लाह रे उस रौज़ा-ए-अक़्दस का तज़य्युन
क़ुरबान हुई जाती हैं आंखें भी, नज़र भी

- (हमारे रसूल, पृ. 439)

नज़्म दर मदह कृष्ण जी-

नीचे लिखी पंक्तियां पढ़ने के बाद अंदाज़ा होता है कि ‘शाद’ एक मज़हबी इंसान थे, अध्यात्म की तरफ़ रुझान था। इस नज़्म में प्रयोग की गई शब्दावली ख़्वाबे-अदम, नक़्श दुई, राहे-हक़ीक़त, राज़े-हक़ीक़त वग़ैरा का इस्तेमाल इस बात को भी ज़ाहिर करता है कि वह तसव्वुफ़ यानी सूफ़ीज़्म के फ़लसफ़े से भी अच्छी तरह वाक़िफ़ थे। मुलाहिज़ा कीजिए-

वो कौन था जो ख़्वाबे-अदम से जगा गया
वो कौन था जो नक़्शे-दुई को मिटा गया
वो कौन था जो राहे हक़ीक़त बता गया
वो कौन था जो वेद का अमृत पिला गया
जलवानुमा-ए-राज़े-हक़ीक़त कृष्ण जी
परदा कुशा-ए-राज़े-हक़ीक़त कृष्ण जी
हाज़िर दरे-हुज़ूर पे है शादे-बे-नवा
यानी कि मद्‌ह गोई का उसको मिले सिला

ये ताब, ये मजाल कहां है उसे भला
तारीफ़ का जो हक़ है उसे कर सके अदा
जलवानुमा-ए-राज़े-हक़ीक़त कृष्ण जी
परदा कुशा-ए-राज़े-हक़ीक़त कृष्ण जी
– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड, भाग-4, पृ. 3337)

‘शाद’ मुरादाबादी

वेदप्रकाश नाम और ‘शाद’ तख़ल्लुस। 1930 ई. में पैदा हुए। एम. ए., एल-एल.बी. करने के बाद दरसो-तदरीस (शिक्षण) से वाबस्ता हुए। डी.ए.वी. कालिज बुलंदशहर में प्रोफ़ेसर रहे। मिर्ज़ा ‘जालिब’ मुरादाबादी के शागिर्द थे। ग़ज़ल के अलावा नज़्मगोई में दिलचस्पी रखते थे। कलाम मुलाहिज़ा कीजिए-

ज़ाहिदो! तुम तो बड़े कुहना शराबी निकले
लबे-कौसर भी गिरे यूं कि संभाले न गये

नज़्म बरसात की घटा-

आसमां से कै़फ़ बरसाती घटा बरसात की
करवटें लेती वो बल खाती घटा बरसात की
– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड, भाग-4, पृ. 2750)

राधाकृष्ण ‘शुक्र’

मुंशी राधाकृष्ण वल्द फ़तेहचन्द कायस्थ मुरादाबाद के रहने वाले थे। तज़्किरा उमदा-ए-मुंतख़बा में लिखा है कि आप अपने दौर के नेक, हमदर्द, मिलनसार, खुश-अख़लाक़ और अच्छे किरदार के इंसान थे। अंग्रेज़ी सरकार के दौर में अच्छे ओहदों पर रहे और इज़्ज़त से

ज़िंदगी बसर की। उन्होंने उस वक़्त तक दीवान जमा नहीं किया था, लेकिन उनका कलाम दादो-तहसीन का हक़दार था यानी अच्छे शेर कहते थे।

– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड, भाग-4, पृ. 12683
ब-हवाला उमदा-ए-मुंतख़बा व तज़्किरा शोअरा-ए-हुनूद)

ख़ैरातीलाल बेजिगर ने अपने तज़्किरे में लिखा है-
(मुअल्लिफ़ तज़्किरा ने उनको 1238 हि. में मेरठ में देखा था। वह जवान, रफ़ीक़ यानी हमदर्द, उमदा-ए-रोज़गार, ख़लीक़ और सूतवदा शिआर इंसान थे।)

– (शोअरा-ए-उर्दू के तज़्किरे पृ. 568, ब-हवाला
तज़्किरा-ए-बेजिगर, ख़ैराती लाल बेजिगर)

कई तज़करों में तलाशो-जुस्तजू के बाद दो शेर दस्तयाब हो सके । उनमें से भी पहला शेर अक्सर तज़्किरानिगारों ने नक़्ल किया है जबकि दूसरा शेर सिर्फ़ एक ही तज़्किरे में नज़र से गुज़रा। मुलाहिज़ा कीजिए-

देख तो ऐ चश्म, सैले अश्क तुग़यानी में है
घर संभाल अपना कि दीवारे-मिज़ह पानी में है
यारो दीवाने की बे बरगी ही बस सामान है
इक लिबासे-आबरू गौहर की उरयानी में है

तज़्किरा गुलिस्ताने-बेख़िज़ां में 'शुक्र' के बारे में लिखा है कि- ''शुक्र तख़ल्लुस लाला राधाकिशन नाम मुरादाबाद इनका जा-ए-मसकन व क़याम। ब्रहमन सुख़न बुतकदाए काग़ज़ में असनाम मज़्मून की पूजा करते हैं। पुजारी फ़िक्र का मुशायरे के मंदिर में बुताने मज़्मून के पांव पर ख़ुदा वास्ते सर धरता है, शुक्र है न शिकायत। शिकायत क्या शुक्र की हिकायत।''

– (गुलिस्ताने-बेख़िज़ां, पृ. 123)

‘शम्स’ मुरादाबादी

मुंशी नारायण सिंह क़ौम के खत्री थे। मुरादाबाद के रहने वाले थे। बिजनौर में मुलाज़िमत करते थे। तज़्किरा गुलशने-हमेशा बहार के मुताबिक़ आप अच्छे अख़लाक़ के आदमी थे। उनके कलाम में मुवाहिदाना (एक ईश्वरवादी) रंग झलकता है, जिससे अंदाज़ा होता है कि वह तसव्वुफ़ की तरफ़ माइल थे। मोअल्लिफ़ तज़करा गुलशन हमेशा बहार (1860 ई.) के मुशायरों में शिरकत करते थे। नमूना-ए-कलाम मुलाहिज़ा कीजिए-

पड़ गया है अब्र ग़फ़लत से हिजाब
छिप रहा है इस बशर में आफ़ताब
ग़ैर दरिया कुछ नहीं मौजे-हबाब
ऐन दरिया जाने अमवाजे-हबाब

- (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड, भाग-4, पृ. 2671
ब-हवाला गुलशने-हमेशा बहार पृ. 206)

‘शौक़’ मुरादाबादी

लाला जगदीशलाल जुत्शी, तख़ल्लुस ‘शौक़’, मुरादाबाद के रहने वाले थे। डा. धर्मेन्द्रनाथ ने अपनी किताब ‘हमारे रसूल’ में उनकी निम्नलिखित नात दी है, जो कि एक रस्मी नात है। लेकिन इससे यह अंदाज़ा तो आसानी से लगाया जा सकता है कि उन्होंने तारीखे़-इस्लाम का अध्ययन ज़रूर किया होगा।

सर चश्मा-ए-अनवार है मीनारे-मदीना
सद ज़ीनते-कोनैन है दरबारे-मदीना
तहज़ीबो-तमद्दुन को नया रंग मिला है
दुनिया में ज़िया बार हैं अनवारे-मदीना

इक अश्के-निदामत के इवज़ गुलशने-जन्नत
क्या ख़ूब है सौदा सरे-बाज़ारे-मदीना
है तक्मिला-ए-इश्क़ मेरा जज़्बा-ए-ईमां
मैं चढ़के कहूं दार पे सरकारे-मदीना
हो सर पे मेरे दस्ते-मुबारक दमे-आख़िर
है शौक़ भी दुनिया में तलबगारे-मदीना

– (हमारे रसूल, पृ. 622)

'शैदा' मुरादाबादी

नाम कैलाशचन्द्र और 'शैदा' तख़ल्लुस था। मुरादाबाद के मशहूर शायर और सहाफ़ी बदर जलाली के शागिर्द थे।

– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड, भाग-4, पृ. 2970)

शैदा के वालिद का नाम मुंशी छेदालाल था जो मुहल्ला किसरौल में दरोग़ा जी के फाटक में रहते थे। बाद में धर्मानन्द ज़ख़्मी के पड़ोस में रानी के फाटक में रहने लगे थे। यहीं 1920-21 ई. में शैदा की पैदाइश हुई। इंटरमीडिएट तक तालीम हासिल करने के बाद कलेक्ट्रेट में मुलाज़िम हो गये थे। 1981 ई. में मुलाज़िमत से रिटायर हुए। उम्र के आख़री दिनों में कैंसर के मूज़ी मर्ज़ में मुब्तिला होकर 23 अक्टूबर 1986 ई. को वफ़ात पाई। चार बेटे और तीन बेटियां यादगार छोड़ीं। सबसे छोटे बेटे श्री राजीव हरी सहाफ़त से वाबस्ता हैं। यह मालूमात उन्हीं से हासिल हुई।

शैदा अच्छे ज़हन के आदमी थे और अक्सर अदबी सरगर्मियों में लगे रहते थे। अदबी नशिस्तों और मुशायरों में भी शिरकत करते थे। यौमे-जमहूरिया (गणतंत्र दिवस) के मौक़े पर कलेक्ट्रेट में मुनअक़िद होने वाले मुशायरे को क़ायम करने में गौहर उस्मानी के शाना-बशाना शरीक रहे। मजमूआ-ए-कलाम तैयार किया था, लेकिन छप नहीं सका।

नमूना-ए-कलाम

लिल्लाह मुझको मुझ-सा कोई ग़मज़दा मिले
कश्ती फ़ंसी भंवर में कोई नाख़ुदा मिले
मंझधार में जो साथ कहीं छोड़ ना सके
गर हमसफ़र मिले तो बहुत बावफ़ा मिले

\+ + +

क़रीब होके भी कश्ती को जो बचा न सका
नदी के ऐसे किनारों की बात क्या कहना
ख़िज़ां का एक ही झोंका चमन को फूंक गया
ज़ख़्म नसीब बहारों की बात क्या कहना

\+ + +

क्या हाल है तेरे शैदा का
फिरता है खोया-खोया-सा
दिन-रात गुज़रते हैं कैसे
दिल रहता है रोया-रोया-सा
एक बार यहाँ आकर देखो

कन्हैयालाल 'ज़ब्त'

कन्हैयालाल नाम और 'ज़ब्त' तख़ल्लुस। वालिद का नाम मोहनलाल था। मुरादाबाद के रहने वाले थे। ज़की मुरादाबादी के शागिर्द थे। कलेक्ट्रेट फ़र्रुख़ाबाद में मुलाज़िम थे। रिटायरमेंट के बाद मुरादाबाद में रहते थे। शायां बरेलवी ने लिखा है कि 1299 हि. मुताबिक़ 1882 ई. के बाद इन्तक़ाल हुआ। आप मुंशी देवीप्रसाद 'रब्त' मुरादाबादी के भाई थे।

तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-हुनूद (गंगो-जमन) में उनके स्वर्गवास का वर्ष 1890 ई. लिखा है, जबकि वल्दियत मोहनलाल लिखी है। दीगर

तज़्किरों में भी उनकी वल्दियत मोहनलाल ही लिखी है। सिर्फ़ शायां बरेलवी ने उनकी वल्दियत सोहनलाल दर्ज़ की है। मुमकिन है कि यह किताबत की ग़लती हो।

तज़्किरा शोअरा-ए-हुनूद में उनका मुंदर्जा ज़ैल कलाम दर्ज है-

वो कोठे पर चढ़े तो चश्मे-बद्दूर
उतारा चांद को सबकी नज़र से
तड़पता है वो ज़ख़्मी नीम जां आज
जिसे मारा था कल तिरछी नज़र से
मुबारक 'ज़ब्त' इश्क़े-तेग़े-अबरू
सुबुकदोश हो गये अब बारे-सर से

+ + +

हमने आलम में क्या नहीं देखा
हां हसीं बावफ़ा नहीं देखा
जिसने मुंह आपका नहीं देखा
उसने नूरे-ख़ुदा नहीं देखा
हूरे-जन्नत को तो ख़ुदा जाने
आदमी आप-सा नहीं देखा
बहरे-हस्ती में आज तक ऐ 'ज़ब्त'
कोई भी आशना नहीं देखा

- (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-हुनूद, पृ. 267)

'तालिब' वीरभान सिंह भारती

नाम वीरभान सिंह भारती और तख़ल्लुस 'तालिब', मुरादाबाद के रहने वाले थे। उनकी निम्नलिखित ग़ज़ल हनीफ़ क़ुरैशी की इदारत में छपने वाले माहनामे 'अंजुमन' (सितम्बर-अक्टूबर 1953 ई.) में उपलब्ध हुई। इसके अलावा उनके दीगर हालात नहीं मिल सके।

अभी कुछ और यादे-यार ऐ ग़म-ख़्वार करने दे
हमें उनसे मुहब्बत का ज़रा इज़्हार करने दे
अभी मोहलत कोई दम दे तलाशे-यार करने दे
हमें हस्ती को उसकी याद में सरशार करने दे
गुज़िश्ता रंजो-हरमां का ज़रा अफ़सोस तो कर ले
हमें अश्कों की लड़ियों को गले का हार करने दे
मुहब्बत में जो सद्दे-राह बन जाती हैं तामीरें
उन्हें नापैद करने दे, उन्हें मिसमार करने दे
सुना हमको न ऐ नासेह नसीहत अपनी, रहने दे
तसव्वुर ही से तसकीने-दिले-बीमार करने दे
अभी उनकी निगाहों को जिगर के पार होने दे
हमें जी-भर के क़ातिल का ज़रा दीदार करने दे
बहुत घुट-घुट के रोया हूं मुहब्बत में अरे नासेह
गिला उनके सितम का अब सरे-बाज़ार करने दे
ये सुनता हूं ज़माने में बहार आई है ऐ 'तालिब'
हमें भी इस दिले-पुर-दाग़ को गुलज़ार करने दे

'आसी' ब्रजवासीलाल भटनागर

मुंशी ब्रजवासीलाल भटनागर तख़ल्लुस 'आसी' के वालिद धूमसिंह 'वासिल' भी शायर थे। आसी मुरादाबाद के रहने वाले थे और तहसील अमरोहा में बाक़ी नवीस थे। ज़की मुरादाबादी के शागिर्द थे। 1888 ई. में उनका दीवान 'नग़मा-ए-तरब' के नाम से छपा था। शायां बरेलवी ने लिखा है कि उनके कलाम में लताफ़त व सफ़ाई और तबीयत में आमद है।

- (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड, भाग-4, पृ. 2935)

साहिबे-तज़्किरा शोअरा-ए-हुनूद जौहर देवबंदी का बयान है कि

उन्होंने उनका दीवान देखा था, मुश्किल ज़मीनों में कलाम कहते थे। उन्होंने आसी का निम्नलिखित कलाम नक़्ल किया है-

सर्द महरी से बुतों की उम्रभर खाई जो ठंड
बर्फ़ की सिल बन गया सीना मेरा पाई जो ठंड
क़ब्र पर अच्छा हुआ जाड़े में पाला पड़ गया
रात को छुप-छुप के उसके बाम पर खाई जो ठंड
ज़िन्दा थे जब तक जलाता ही रहा वो शोला रू
अब मिला है क़ब्र में आराम, कुछ पाई जो ठंड
आग की मानिन्द पानी का भी होता है असर
जल गया गुलज़ार शबनम से, बहुत पाई जो ठंड
और भी 'आसी' ज़्यादा गर्मी-ए-सौदा हुई
बैठकर शबनम में तनहा रातभर खाई जो ठंड

\+ + +

क्या क़ाफ़िले आंखों से चले जाते हैं या रब
इस राह में नक़्शे-कफ़े-पा को नहीं देखा
करता है मेरे सामने हूरों की जो बातें
ज़ाहिद ने बुते-होश रुबा को नहीं देखा
हसरत मेरी जिस तर्‌ह मुझे पीट रही है
यूं मैंने किसी अहले-अज़ा को नहीं देखा
हर ज़र्रे में ताबां है उसी मेह्‌र का जलवा
'आसी' कहें किस तर्‌ह ख़ुदा को नहीं देखा

\+ + +

दिल में गर इश्क़ के सामान न पैदा होते
ऐसे हम क्या थे जो यूं ख़ल्क़ में रुसवा होते
शोख़ चश्मी के मज़े उनसे उठाते क्या-क्या
बाग़े-हस्ती में जो हम नर्गिसे-शहला होते
दम निकलता न ग़मे-यास में बेहतर होता
काश दुनिया में न हम अहले-तमन्ना होते

काबा-ओ-दैर में कुछ फ़र्क़ न होता 'आसी'
अहले-दुनिया जो फ़रेबों से मुबर्रा होते

रुबाइयात-

है कोई यहां पर साहिबे हशमतो-जाह
और कोई मुसीबत में परेशानो-तबाह
डरियेगा दो रंगी-ए-जहां से 'आसी'
वो शान है किब्रिया की अल्लाह-अल्लाह

+ + +

तहरीर की कुछ नहीं ज़रूरत हरगिज़
तक़रीर की कुछ नहीं ज़रूरत हरगिज़
तक़दीर में वस्ल है तो होगा 'आसी'
तदबीर की कुछ नहीं ज़रूरत हरगिज़

- (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-हुनूद, पृ. 295-297)

'ग़ाफ़िल' प्यारेलाल

प्यारेलाल कायस्थ तख़ल्लुस 'ग़ाफ़िल' की पैदाइश 1877 ई. में मुंशी ज्वालाप्रसाद के घर मुरादाबाद में हुई। मुंशी ज्वालाप्रसाद कलेक्ट्रेट बदायूं में जनरल सुपरिंटेंडेंट थे। जबकि प्यारेलाल 'ग़ाफ़िल' बरेली में क़ुर्क अमीन रहे। बनवारी लाल 'शोला' के शागिर्द थे।

तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-हुनूद में ग़ाफ़िल का निम्नलिखित कलाम दर्ज है-

बढ़ते बढ़ते ख़ुद-ब-ख़ुद घट जायेगा दर्दे-जिगर
इंतिहा-ए-दर्द ही आख़िर दवा हो जायेगी
क्या बिगाड़ेगी मेरा मेरे अदू की बद्दुआ
है ख़ुदा सीधा तो ग़ाफ़िल वो दुआ हो जायेगी

+ + +

उरूजे-सर-बलन्दी हमने पाया ख़ाक में मिलकर
निकल आया ज़मीं की तह में ज़ीना बामे-रिफ़अत का

\+ + +

दिल की हर मंज़िल में हैं सौ सौ जगह दैरो-हरम
गोशा-गोशा इस मकां का जलवागाहे-यार है

\+ + +

चश्म ख़्वाबीदा में बेदार नज़र रखते हैं
बेख़बर तेरे दो आलम की ख़बर रखते हैं

'ग़ाफ़िल' बख़्तावर सिंह

बख़्तावर सिंह तख़ल्लुस 'ग़ाफ़िल' का तअल्लुक़ कायस्थ ख़ानदान से था। आगरा में रहते थे। साहिबे-इक्सीर थे। आगरे के बहुत लोगों को आपसे फ़ायदा पहुंचा । एक दीवान और एक मसनवी आप से यादगार है-

– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड, भाग-4, पृ. 2687)

मियां 'बिस्मिल', 'शक्ल' व मीर तुराब अली 'आदिल' आपके ख़ास शागिर्दों में थे।

– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-हुनूद)

तज़्किराए-गुलशने-बेख़ार, तबक़ात शोअरा-ए-हिन्द, सुख़न शोअरा, यादगार शोअरा वग़ैरा ने ग़ाफ़िल का सिर्फ़ यही शेर नक़्ल किया है-

बीमारे-इश्क़ की न दवा हो तबीब से
मर जाये या जिये कोई अपने नसीब से

साहिबे-तज़्किरा गुलिस्ताने-बेख़िज़ां ने बख़्तावर सिंह ग़ाफ़िल का ज़िक्र करते हुए लिखा है कि-

ग़ाफ़िल-तख़ल्लुस राजा बख़्तावर सिंह नाम मुरादाबादी-अर्साए-दराज़ तक जद्द देहली में क़याम पज़ीर। बारहा ब-महफ़िल मुशायरा महाराजा

तशरीफ़ लाते। ग़ज़लियात तरह की सामइन के रूबरू तौक़ीर। अक्सर शाइक़ीन को उनसे मशवरा था। उनकी ज़बानों पर उन्हीं का तज़्किरा था। आसी पर नज़रे इनायत थी बदरजा शफ़क़त थी। अक्से तख़ल्लुस फ़िक्र शेर का अंदाज़, ग़ाफ़िल नाम पर हुशियार। बाज़ अय्याम क़रीब गुज़रे कि इस जहां से गुज़रे। मर्दे तजुर्रुद पेशा आबो-नान से गुज़रे। ग़ालिबन दौलत कीमिया की बदौलत बे-अंदेशा थे। शेरगोई में साहिबे-फ़िक्र व हाकिम पेशा थे। अब क़ौल ग़ाफ़िल का बयान है, हुशियारों का उस पर कान है। (गुलिस्ताने-बेख़िज़ां)

बख़्तावर सिंह 'ग़ाफ़िल' का कलाम जो मुख़्तलिफ़ तज़्किरों से दस्तयाब हुआ, ज़ैल में पेश किया जा रहा है-

साफ़ करता रहा कल मुझपे वो तलवार के हाथ
उठके पकड़े न किसी ने मेरे ख़ूंख़्वार के हाथ
छुप गया पंजा-ए-ख़ुर्शीद तहे-दामने-अब्र
देख मेहंदी रची उस शोख़ सितमगार के हाथ

+ + +

क़त्ल करता भी है और कहता है फ़रियाद न कर
ये सितम हम पे नया और तू ईजाद न कर

+ + +

चमने-कूचा-ए-जानां से ये क्या आती है
नाज़ करती हुई जो बादे-सबा आती है
तारे-गेसू में उलझता है सरे-शाम से दिल
रात क्या आती है इक सर पे बला आती है
मुझसा होगा न कोई अहले-वफ़ा ऐ 'ग़ाफ़िल'
कि मेरी ख़ाक से भी बू-ए-वफ़ा आती है

+ + +

पूछूंगा इतनी बात मैं उस कज कुलाह से
देखा करे है क्यों मुझे तिरछी निगाह से

‘फ़र्रुख़’ चौबे बद्रीदास

चौबे बद्रीदास तख़ल्लुस ‘फ़र्रुख़’, चौबे गंजलाल के फ़रज़न्द थे। मुरादाबाद के रहने वाले थे और शायरी में इन्द्रमन ‘फ़क़ीर’ के शागिर्द थे।

इनका जो कलाम उपलब्ध हुआ, उसे पढ़कर अन्दाज़ा होता है कि उनके मिज़ाज में आजिज़ी व इनकिसारी और तबीयत का रुझान तसव्वुफ़ की तरफ़ था।

आतिशे-इश्क़ ने फूंका मुझे शोला होकर
जल गया आरिज़े-पुरनूर का शैदा होकर
दिले-मजरूह का मेरे है ख़ुदा ही नासिर
सफ़ें मिज़गान की घिर आईं सफ़ आरा होकर
बाग़े-आलम में रऊनत की हवाओं से बचो
बे-समर सर्व रहा, देख तो राना होकर
गोशागीरी ने ज़माने में मेरा नाम किया
बाइसे-शोहरते-आलम हुआ उनका होकर

– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-हुनूद, पृ. 319)

‘कैफ़ी’ मुरादाबादी

नाम भूकनसरन और तख़ल्लुस ‘कैफ़ी’ था। जनाब अमीर हसन खां नामी के शागिर्द थे। शायां बरेलवी ने लिखा है-

“बाद में जिगर के शागिर्द हो गये थे। मज़ाक़ शेरी बहुत अच्छा था। अशआर में जज़्बात के साथ-साथ मज़्मून आफ़रीनी भी थी। कसरते-मयनोशी (शराब के अधिक सेवन) के सबब जवानी में फ़ौत हो गये।” कलाम उपलब्ध नहीं हो सका।

– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड, भाग-4, पृ. 3318)

‘गोपाल’ मुरादाबादी

नाम गोपाल सहाय और तख़ल्लुस ‘गोपाल’ था। तरीक़ कुंदरकवी से इस्लाह लेते थे। विद्यार्थी जीवन से शेरो-सुख़न का शौक़ था। 1895 ई. में मुरादाबाद के मिडिल स्कूल में विद्यार्थी थे। उस वक़्त उनका कलाम ‘पयामे यार’ (अगस्त 1895 ई.) में छपा था। दो शेर यहां पेश किये जा रहे हैं-

ग़ैर को प्यार से बिठाते हैं
हम निकाले गये हैं महफ़िल से

\+ + +

दर्दे फ़ुरक़त से हम तड़पते हैं
ज़ुल्म की यार इन्तिहा भी है

- (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड, भाग-4, पृ. 3411)

‘मसरूर’ पंडित कामताप्रसाद

पंडित कामताप्रसाद का तख़ल्लुस ‘मसरूर’ था। मुरादाबाद के साहिबे-सरवत और बा-हैसियत शख़्स थे। उनका शुमार शहर के रईसों में होता था। 1882 ई. में मुरादाबाद के डिप्टी कलेक्टर थे। राजा किशन कुमार वक़ार के जश्ने-ताजपोशी के मौक़े पर क़ता-ए-तारीख़ कहा था। उनके बारे में मुंशी पीतम राय लिखते हैं-

“ये साहब बहुत होशियार, कारगुज़ार, दयानतदार, ख़ुशगो, बिसयारगो और ज़ूदगोह (बहुत ज़्यादा और तेज़ी से कहने वाले) हैं। तबीअत चालाक, फ़िक्र रसा है। राजा साहब बहादुर के बड़े दोस्त हैं। तारीख़ दोस्ताना कही है।”

मिला ख़िताब है राजा किशन कुमार को आज
ये रोज़े-नेक है अहबाब को शबे-मेराज

अगरचे मद्ह अमीरों की अपना काम नहीं
है सर्व की रविश आज़ाद ये फ़क़ीर मिज़ाज
बनाया उनकी मुहब्बत ने बंदा-ए-बे-दाम
नहीं है उनकी लियाक़त बयान की मोहताज
यही निकलती है बे साख़्ता दुआ दिल से
जहां में ज़ेबे-सरे-ख़ुसरवां है जब तक ताज
हसद-हुसूद को, 'मसरूर' को सुरूर नसीब
मुबारक अब रहे उस ज़ोहरा बाविक़ार को राज

(1299 हि.) - (मदीहा-ए-विक़ार पृ. 101)

'मुश्फ़िक़' रामकृष्ण

नाम रामकृष्ण और तख़ल्लुस 'मुश्फ़िक़'। क़ौम के अग्रवाल महाजन थे। 1914 ई. में गुलशनाबाद में पैदा हुए। पढ़ाई के दौरान उन्होंने उर्दू को सैकिंड लेंग्वेज बनाया। उर्दू और फ़ारसी की तालीम मिर्ज़ा इरशाद बेग से हासिल की। 1937 ई. में शादी हुई। 1942 ई. में अंग्रेज़ी में एम. ए. किया। उसी साल एस.आर. हाईस्कूल रतनगढ़ बीकानेर में अंग्रेज़ी के टीचर मुक़र्रर हुए। 1947 ई. में टीचर्स ट्रेनिंग कालिज अजमेर से बी.टी. सी. की डिग्री हासिल की। 1948 ई. में मुरादाबाद के हैविट मुस्लिम इंटर कॉलिज में अंग्रेज़ी के लेक्चरर की हैसियत से तक़र्रुर हुआ। जहां अंग्रेज़ी की तालीम के अलावा बहैसियत सीनियर मिलिटरी इंस्ट्रक्टर भी तालीम देते थे। 26 साल दर्सो-तदरीस की ख़िदमात अंजाम देने के बाद 1974 ई. में मुलाज़िमत से सुबुकदोश हुए। अपने फ़ुर्सत के क्षणों में साहित्य-सृजन करते हुए 1995 ई. में दुनिया-ए-फ़ानी को अलविदा कहा। मुरादाबाद में मुलाज़िमत के बाद उन्होंने इस शहर को अपना दूसरा वतन बना लिया था और मुहल्ला कटघर में रहते थे।

शेरो-शायरी का ज़ौक़ इब्तिदाई उम्र से ही था। जब हाईस्कूल में थे,

तब मुंशी रहीम उल्ला शाह नादां गुलशनाबादी के शागिर्द हो गये। उनके बाद 'बेदिल' अजमेरी से इस्लाह ली। मुश्फ़िक़ को नज़्म की तमाम विधाओं पर पकड़ हासिल थी। उनका मजमूआ-ए-कलाम 1993 ई. में 'मतला-ए-अनवार' के नाम से शाया हुआ।

– (मुदर्रिसीने-मुरादाबाद और उर्दू शायरी, पृ. 125)

हम्द

क्या ज़िक्र अर्शो-फ़र्श का नज़दीको-दूर का
जलवा नज़र में रहता है तेरे ज़ुहूर का
ख़ुर्शीद में, क़मर में, सितारों में, चर्ख़ में
जलवा दिखाई देता है तेरे ही नूर का
मंसूर के लबों पे अनल हक़ की थी सदा
क्या मर्तबा है आलमे-कैफ़ो-सुरूर का
'मुश्फ़िक़' के सर पे साया-ए-रहमत हो हश्र में
ख़्वाहां वो ख़ुल्द का है न तालिब है हूर का

नात

मक़बूल बारगाहे-ख़ुदा का कहूं तुम्हें
अच्छे हो तुम जहान से अच्छा कहूं तुम्हें
सारा जहां बना है तुम्हारे ही वास्ते
सारे जहां से अफ़ज़लो-आला कहूं तुम्हें
अरमां तुम्हारा ख़ल्क़ को, तुमपे निसार ख़ल्क़
ख़ल्क़त की आरज़ू-ओ-तमन्ना कहूं तुम्हें
सानी नहीं है कोई तुम्हारा जहान में
यकता कहूं तुम्हें कि अनोखा कहूं तुम्हें
मुस्लेह भी तुम हो, ख़ुल्क़े मुजस्सम रसूल भी
पहरों ये सोचता हूं कि क्या-क्या कहूं तुम्हें

महबूबे-हक़ हो, बानी-ए-दीं, मुश्फ़िक़े-जहां
रौनक़ फ़ज़ा-ए-काबा-ओ-बतहा कहूं तुम्हें

ग़ज़लें

ये किसकी दिल पे चश्मे-हक़ीक़त निगर गई
पैमाना-ए-हयात को ताबिन्दा कर गई
इक रोज़ दिल तक उनकी कुछ ऐसी नज़र गई
इरफ़ानियत के इसमें सभी रंग भर गई
ईमानो-दीं भी छीन लिये दिल के साथ-साथ
उनकी वो इक निगाह बहुत काम कर गई
देखा उन्होंने आंख उठाकर न इस तरफ़
गो ये निगाह उनकी तरफ़ उम्रभर गई
उस बेनिशां का कोई न अब तक निशां मिला
देखा हर एक सिम्त जहां तक नज़र गई
जबसे मिली नज़र, वो नज़र देखता रहा
सौ बार आके फ़स्ले-बहारां गुज़र गई
वो हुस्न, वो जमाल, वो अंदाज़ देखकर
तस्वीर उनकी दीदा-ओ-दिल में उतर गई
मुद्दत के बाद आई है 'मुश्फ़िक़' शबे-विसाल
शामे-बला-ए-हिज्र जो सर थी गुज़र गई

\+ + +

तेरा ही बाग़े-हुस्न है, तेरे ही रंगो-बू
जिस शय में देखता हूं उसी में है तू ही तू
ये हुस्न, ये शबाब, ये शोख़ी, ये रंगो-बू
बेशक तू लाजवाब है ऐ जाने-आरज़ू
ये और बात है कि वो लब पर न आ सके
जो तेरी आरज़ू है, वही मेरी आरज़ू

अब तक न तू मिला, न तेरा आस्तां मिला
मैं फिर रहा हूँ तेरे तजस्सुस में कू-ब-कू
सज्दा मुझे रवा है हर इक, सिम्त हर जगह
मेरी नज़र में जलवा-ए-जानां है चार-सू
मैं और तू का फ़र्क़ नहीं अब निगाह में
दोनों की एक हालतो-सूरत है हू-ब-हू
बहला रहा हूं आरज़ू-ए-दिल को इस तरह
वादे पे वादा जैसे करे कोई माह-रू
अब तेरे पा-ए-नाज़ पे सदक़े हो इसकी जां
'मुश्फ़िक़' के दिल में और नहीं कोई आरज़ू

'मफ़्तूं' पंडित लक्ष्मण नारायण

नाम पंडित लक्ष्मण नारायन, पिता पंडित गोवर्धनदास, 1821 ई. में मुरादाबाद में पैदा हुए और 1887 ई. में स्वर्गवास हुआ। उर्दू और फ़ारसी दोनों ज़बानों पर पकड़ रखते थे। लिहाज़ा शायरी भी दोनों ज़बानों में करते थे। 'मफ़्तूं' तख़ल्लुस था। ग़ालिब के शागिर्द थे। तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-हुनूद से उनका निम्नलिखित कलाम उपलब्ध हुआ जिसे पढ़ने के बाद मफ़्तूं की इल्मियत व क़ाबिलियत और ज़बानो-बयान पर पकड़ का अंदाज़ा आसानी से लगाया जा सकता है-

मुर्ग़े-बिस्मिल हो गये मेरा तड़पना देखकर
लौटे हैं अहले-तमाशा ये तमाशा देखकर
किस क़दर दम ख़ूरदा सहरा-ए-वहशत हो गया
हाथ में नब्ज़े-ग़िज़ाली मेरे ईसा देखकर
सामरी आख़िर असीरे-दामे-उल्फ़त हो गया
चश्मे-फ़त्तां में तेरे जादू का सुरमा देखकर

गर्म हो अब बज़्मे-नावो-नोश बे-ख़ौफ़ो-ख़तर
मोह्तसिब साक़ी बना तुंदी-ए-सहबा देखकर
(तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-हुनूद)

लाला जयसुखलाल 'मक़बूल'

लाला जयसुखलाल का तख़ल्लुस 'मक़बूल' और वालिद का नाम चुन्नीलाल था। उनके आबा व अजदाद और यह ख़ुद भी मुरादाबाद के रहने वाले थे, लेकिन मुलाज़िमत की वजह से लखनऊ के मुहल्ला नौबस्ता में रहते थे। लखनऊ में कचहरी सुल्तानी में फ़रमान लिखने का काम करते थे। साहिबे-दीवान शायर थे। मुंशी मेंडू लाल 'ज़ार' के शागिर्द थे।

साहिबे-तज़्किरा सुख़ने-शोअरा ने निम्नलिखित दो शेर लिखे हैं-

अज़ीज़ो यूसुफ़े-किनआँ की चाह में अब तो
कुएं झंकायेगा मुझको हज़ार दिल मेरा

\+ + +

लोग रोते हैं क़ज़ा सर पे खड़ी हंसती है
ज़ाफ़रानी हुआ जबसे तेरे बीमार का रुख़
- (सुख़ने-शोअरा, पृ.453)

तज़्किरा 'सरापा सुख़न' में मक़बूल के ये अशआर उपलब्ध हुए-

देखने पाऊँ अगर उस गुले-बे-ख़ार का रुख़
ता-दमे-मर्ग न देखूं किसी गुलज़ार का रुख़
कल क़ज़ा आइयो तू! वादा-ए-दीदार है आज
देख लेने दे मुझे बहरे-ख़ुदा यार का रुख़
मस्त क्योंकर न हमेशा रहे 'मक़बूल' भला
देखता है वो मुदाम उस बुते-मयख़्वार का रुख़

\+ + +

इलाही किससे हुआ है दो-चार दिल मेरा
तपां है सीने में सीमाब वार दिल मेरा
हुआ है जबसे मुझे इश्क़े-काकुलो-रुख़सार
तपीदा रहता है लैलो-निहार दिल मेरा
बहुत खिलाएगा गुल गर जुनूं सलामत है
दिखाएगा अभी क्या-क्या बहार दिल मेरा
ग़ज़ब की जा है नहीं आज तक तुम्हें मालूम
हुआ है तुमपे मेरी जां निसार दिल मेरा

- (सरापा सुख़न, पृ. 156)

'मुमताज़' भगवतसरन अग्रवाल

भगवतसरन की पैदाइश मुरादाबाद के अग्रवाल घराने में हुई थी। उनके वालिद का नाम लाला रामस्वरूप अग्रवाल था। शुरू दिन से ही कांग्रेस पार्टी से मुंसलिक हो गये थे। वतने-अज़ीज़ की आज़ादी के लिए सर पर कफ़न बांधे अंग्रेज़ों से लोहा लिया, जिसकी पादाश में 1922 ई. में 2 साल क़ैद बा-मुशक़्क़त और 50 रुपये जुर्माना, 1932 ई. में 6 माह की सख़्त क़ैद और 50 रुपये जुर्माना, 1942 ई. में एक मर्तबा 8 माह की क़ैद और दूसरी मर्तबा तीन बरस नज़रबन्दी की सज़ा हुई। इसके अलावा भी कई बार जेल गये। यहां तक कि 'जेली' लफ़्ज़ उनके नाम का हिस्सा बन गया था। लिहाज़ा उन्हें 'भगवतसरन जेली' कहा जाने लगा था। 1973 ई. में वफ़ात पाई। मुजाहिदे-आज़ादी महबूब हुसैन सब्ज़वारी लिखते हैं-

"लाला भगवतसरन साहब मुझसे बहुत ही मुहब्बत करते थे और ज़्यादातर वक़्त मेरे मकान पर गुज़ारते थे और हिन्दुस्तान की जंगे-आज़ादी के शैदाई थे। तमाम उम्र जेल में रहे नेताओं के साथ। इसी मुनासिबत से भगवतसरन जेली के नाम से मशहूर हुए। आप उर्दू के बहुत अच्छे

शायर थे। हज़रत रईस अमरोहवी से इस्लाह लेते थे और 'मुमताज़' तख़ल्लुस था। अफ़सोस कि उनका तहरीरकर्दा दीवान अगर उनके भतीजे शाया करा देते तो एक अज़ीम मुजाहिदे-आज़ादी अपने क़लमी कारनामे के साथ ज़िन्दा रहता ।''

– (मुरादाबाद तारीख़े-जद्दोजहद आज़ादी, पृ. 32)

श्री जगन्नाथ अग्रवाल (से.नि. प्रबंधक पंजाब नैशनल बैंक) मुमताज़ साहब के भतीजे श्री वीरेन्द्रकुमार अग्रवाल भट्टे वालों के हवाले से रिवायत करते हैं कि 1928 या 1929 ई. में महात्मा गांधी की सभा में मुमताज़ साहब ने क़सम खाई थी कि ग़ुलाम हिन्दुस्तान में बच्चे पैदा नही करेंगे, लिहाज़ा उन्होंने शादी नहीं की। ज़िंदगीभर अविवाहित रहे। लालबहादुर शास्त्री भी उनके दोस्त थे। 1948 ई. में उन्होंने मुमताज़ साहब के घर खाना खाया था।

मैंने (लेखक) उनका कलाम मुख़बिरे-आलम की फ़ाइलों में देखा है, लेकिन अफ़सोस है कि व्यस्तता के कारण उसे नक़्ल नहीं कर सका और सरदस्त वहां तक रसाई दुश्वार है। श्री जे.एन. अग्रवाल की मार्फ़त दर्ज ज़ैल शेर हासिल हुआ-

निशाने-गर्दिशे-दौरां मुझे मिटाने दो
ख़ुलूसो-अम्न के दरिया मुझे बहाने दो

शायां बरेलवी ने 'मुमताज़' को काशिफ़ी मुरादाबादी का शागिर्द लिखा है और मुमताज़ ने भी काशिफ़ी से अपनी अक़ीदत का इज़हार करते हुए एक शेर में कहा-

रूहे-रवाने-इल्मो-अदब उनकी ज़ात थी
'मुमताज़' काशिफ़ी से हैं अब अह्ले-फ़न कहां

इससे साबित होता है कि मुमताज़, काशिफ़ी के क़द्रदान थे, लेकिन यह साबित नहीं होता कि वो उनके शागिर्द भी थे। मेरी राय में चूंकि महबूब हुसैन सब्ज़वारी, 'मुमताज़' के अहबाब में शामिल रहे हैं, लिहाज़ा उनका बयान ज़्यादा मोतबर है कि 'मुमताज़' रईस अमरोहवी के

शागिर्द थे।

मुमताज़ उर्दू ज़बान और अदब के बड़े चाहने वाले थे। वो शहर में होने वाली महफ़िलों में पाबंदी से शरीक होते थे, ख़ासतौर पर तरही नशिस्तों में, क्योंकि मुमताज़ की डायरी में मौजूद अक्सर ग़ज़लें मिसरे-तरह पर ही कही गई हैं। उन्होंने एक अदबी तंज़ीम 'तश्कीले-अदब' के नाम से भी बनाई थी, जिसके वो सद्र थे।

जिस दीवान का ज़िक्र महबूब हुसैन सब्ज़वारी ने किया है, वो दीवान नहीं, बल्कि मजमूए-कलाम है, जो एक डायरी पर मुमताज़ साहब की हैंड राइटिंग में मौजूद है, जिसमें 120 पृष्ठ हैं। इसमें नातें, मनक़बत, सलाम, ग़ज़लें, नज़्में, क़तआत और सेहरे वग़ैरा शामिल हैं। इससे अंदाज़ा होता है कि मुमताज़ साहब को शायरी की तमाम विधाओं पर पकड़ हासिल थी। डायरी में चार-पांच कलाम फ़ारसी में भी हैं, जिससे मालूम होता है कि वो फ़ारसी से भी अच्छी तरह वाक़िफ़ थे। ख़ुशी की बात ये है कि मुमताज़ साहब के भतीजों ने यह डायरी डा. अजय अनुपम साहब को दे दी है। उम्मीद है कि मुमताज़ का मजमूए-कलाम जल्दी प्रकाशित हो जाएगा।

नात

ग़ुलामी-ए-शहेवाला से मुत्तसिफ़ होना
ये फ़ख़्र कम नहीं दुनिया में आदमी के लिए
नबी के दर्दे-मुहब्बत में लज़्ज़तें पाकर
दुआएं मांग रहा हूं मैं ज़िंदगी के लिए
ये शाने-लुत्फ़ो-करम थी नबी-ए-अकरम की
दुआएं रब से थीं हर एक उम्मती के लिए
मिला शऊर मुझे उनका ज़िक्र करने का
ज़बां मिली मुझे तौसीफ़े-अहमदी के लिए
नज़र मिली मुझे 'मुमताज़' दीद की ख़ातिर
हुई है दिल में जगह उल्फ़ते-नबी के लिए

श्रीकृष्ण के दरबार में–

चमन में, फूल में, गुलशन में और ख़ारों में
कहां-कहां तुझे ढूंढा न इन नज़ारों में
किया जो गीता का उपदेश तूने अर्जुन को
तेरी तलाश की गीता के उन इशारों में
न पाया द्वारिका जाकर भी कुछ पता तेरा
सुदामा की तरह पहुंचा था राज़दारों में
ये जानता था मिलोगे क़रीब जमुना के
मगर उदासी ही पाई वहां किनारों में
मिलोगे कृष्ण-कन्हैया कहां बता भी दो
पहुंच ही जाऊंगा उड़कर मैं चांद-तारों में
किसी ने पूछा तो 'मुमताज़' कह दिया रोकर
कि कृष्ण आते हैं आख़िर को ग़म के मारों में

क़तआत

कहते हैं हमें लोग इमामे-उर्दू
दम से है हमारे ही निज़ामे-उर्दू
हम मालिके-तालीमे-सुख़न हैं 'मुमताज़'
है हाथ में अपने ही ज़मामे-उर्दू

\+ + +

हर तरफ़ से आज मुझ पर यूरिशे-आलाम है
हर क़दम पर आज मेरे वास्ते इक दाम है
पूछने की तुझसे जुरअत कर रहा हूं आज मैं
क्या मेरे माबूद आज़ादी इसी का नाम है

\+ + +

हिंदुओं की है कमी और न मुसलमानों की
कोई दुनिया में कमी है तो है इंसानों की

अक़्ल से शेख़ो-बिरहमन के उठा दे परदे
ऐ ख़ुदा तुझसे दुआ है तेरे दीवानों की

ग़ज़ल

तबाहियों को किया अपनी यूं हसीं मैंने
बनाया ग़म को तेरे नाज़ आफ़रीं मैंने
जहां यकीन हुआ नक़्शे-पा का वहशत में
बसद नियाज़ झुका दी वहीं जबीं मैंने
सिमट के दैरो-हरम आ गए पए-ताज़ीम
जबीने-शौक़ झुकाई जहां कहीं मैंने
नियाज़ो-नाज़ की मजबूरियां मआज़ अल्लाह
कहीं उन्होंने बचाई नज़र कहीं मैंने
जबीने-शौक़ झुकाकर बसद नियाज़ो-ख़ुलूस
बनाया काबा तेरे दर को बिलयकीं मैंने
ख़याल आता है 'मुमताज़' ये मुझे हरदम
किसी के वादे का क्यों कर लिया यक़ीं मैंने

\+ + +

याद में ये आलम होता है
हर आंसू शबनम होता है
शामे-फ़ुरकत तौबा-तौबा
हसरत का मातम होता है
क्या मुझको वो भूल गए हैं
दर्द जो अब कुछ कम होता है
मयख़्वारों की अज़मत देखो
हाथ में जामे-जम होता है
कह दो ऐ 'मुमताज़' ये उनसे
दिल ही शरीके-ग़म होता है

\+ + +

शर्म बर्क़े-तपां नहीं आती
क्यों सू-ए-आशियां नहीं आती
कौन है अब मेरे तसव्वुर में
नींद क्यों मेह्रबां नहीं आती
पहले सरगर्मे-आह रहता था
अब लबों पर फ़ुग़ां नहीं आती
भूल के भी अब उनके होंठों पर
'नहीं' आती है, 'हां' नहीं आती
किसने पामाल कर दिया गुलशन
लब पे ये दास्तां नहीं आती
क्या करें क़द्र वो ग़ज़ल की मेरी
जिन्हें उर्दू ज़बां नहीं आती
वो हरम हो कि बुतकदा 'मुमताज़'
याद उनकी कहां नहीं आती

\+ + +

दीदा-ए-अश्कबार की बातें
फिर दिले-बेक़रार की बातें
कोई क्या जाने, कोई क्या समझे
हां तेरे बादाख़्वार की बातें
वाह क्या शाने-अह्ले-वहशत है
हैं ख़िज़ां में बहार की बातें
पूछता कौन है दिले-मुज़्तर
दामने-तार-तार की बातें
कभी कहना, कभी मुकर जाना
हैं ये क़ौलो-क़रार की बातें?
मेरे मयख़ाने को उजाड़ न दें
ज़ाहिदे-फ़ितनाकार की बातें

ज़िक्र जन्नत का कर न ऐ वाइज़
हां मगर हुस्ने-यार की बातें
नहीं आतीं समझ में ऐ 'मुमताज़'
अब किसी ग़म गुसार की बातें

'मुंशी' ब्रजमोहन लाल

ब्रजमोहन लाल, 'मुंशी' तख़ल्लुस रखते थे। मुरादाबाद के रहने वाले थे। बुज़ुर्ग शायर थे। अक्सर पत्रिकाओं में कलाम प्रकाशित होता था। अहमद हुसैन 'तसख़ीर' मुरादाबादी के शागिर्द थे। गुलशने-सुख़न अमरोहा 1894 ई. में उनके निम्नलिखित शेर दर्ज हैं, जिससे मालूम होता है कि उन्नीसवीं सदी के आख़िर में हयात थे। नमूना-ए-कलाम मुलाहिज़ा कीजिए-

आंखों में जान, लब पे दुआ, दिल में दर्द था
मरने मगर दिया न तेरे इंतज़ार ने
'मुंशी' कभी न ग़ुंचा-ए-दिल अपना वा हुआ
यूं गुल खिलाए सैंकड़ों फ़सले-बहार ने

- (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड, भाग-4, पृ. 1957
ब-हवाला गुलशन सुख़न अमरोहा 1894 ई.)

'वफ़ा' मुरादाबादी

पंडित महेन्द्रनाथ नाम और तखल्लुस 'वफ़ा'। 'जौहर' मुरादाबादी के शागिर्द थे। सिविल लाइंस मुरादाबाद में रहते थे। उनके सिर्फ़ तीन शेर उपलब्ध हुए। तीसरा शेर देखकर अन्दाज़ा होता है कि वो आध्यात्मिक व्यक्ति थे ।

ज़िन्दगी ख़ूगरे-ग़म क्यों तुझे दुश्वार न हो
माइले-जोरो-जफ़ा जब वो सितमगार न हो
दे रही है ख़लिशे-दिल मुझे पैग़ामे-हयात
ये भी एजाज़ तेरा ऐ निगहे-यार न हो
पर्दा-ए-ज़ीस्त को ये कह के उठाया मैंने
अपनी ही हस्ती कहीं माना-ए-दीदार न हो

– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड, भाग-4, पृ. 2859)

लाला नवलराय 'वफ़ा'

राजा नवलराय क़ौम के कायस्थ भटनागर मुरादाबाद के रहने वाले थे। जनाब क़ायम चांदपुरी के मुताबिक़ उनके बड़े भाई, जबकि ख़ैराती लाल बेजिगर और 'मुब्तिला' मेरठी के मुताबिक़ उनके चचा राजा गुलाब राय नवाब नजीब-उद्-दौला के दीवान और मदारुलमुहाम (सर्वेसर्वा) थे। ख़ुद राजा नवलराय भी रामगंगा नदी के किनारे बाज़ परगनों की तहसील वसूली पर तैनात थे। सैयद रफ़ीक़ अहमद मारहरवी ने अपने मज़मून ('ज़माना' माह जुलाई 1940 ई.) में लिखा है कि राजा साहब के बाप-दादा इटावा के ख़ानदानी क़ानूनगो थे। उनका इब्तिदाई ज़माना राजा रतनसिंह 'ज़ख़्मी' बरेलवी के पास गुज़रा। ज़ाती क़ाबिलियत और कारकर्दगी की बदौलत नवलराय भी राजा हुए। अहमद शाह के दौरे-हुकूमत 1748 से 1754 ई. में अबुलमंसूर सफ़दर जंग को अवध और इलाहाबाद की सूबेदारी मिली तो राजा नवलराय दोनों सूबों में उनके नायब रहे। 1752 ई. में एक जंग में शहीद हुए।

– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड, भाग-4, पृ. 2721-24)

राजा नवलराय बा-सलाहियत, बा-तदबीर मंसबदार, बहादुर सिपहसालार और बे-बदल शायर थे। जनाब जिगर बरेलवी ने उनको मीर तक़ी मीर पर फ़ौक़ियत देने की कोशिश की है। उन्होंने लिखा है कि-

''आज अगर उनका (नवल राय वफ़ा का) दीवान 'मीर' के कुल्लियात की तरह हमारी नज़र के सामने होता तो यह अंदाज़ा करने का मौक़ा था कि जिस रंग को 'मीर' से मंसूब किया जाता है उसका सर-चश्मा किसके यहां से निकला।''

हालांकि जिगर बरेलवी का क़ौल मुबालिग़ा आराई (अतिशयोक्ति) से ज़्यादा कोई अहमियत नहीं रखता ।

राजा नवल राय शायरी में क़ायम चांदपुरी के शागिर्द थे। क़ायम चांदपुरी ने अपने तज़्किरे-मख़्ज़ने-निकात में उनका ज़िक्र इस तरह किया है-

तर्जुमा : ''अरबाब सफ़ा में मक़बूल लाला नवलराय मुत-ख़ल्लुस 'वफ़ा' नौ उम्र जवान हैं। तमाम ख़ूबियों के मालिक हैं। जिद्दते-ज़ह्न, जोदते-फ़हम, असाबत-राय, लताफ़त मिज़ाज बमर्तबा अतम रखते हैं। उनके ब्रादरे बुज़ुर्ग राजा गुलाबराय अमीरुलउमरा नवाब नजीबुद्दौला बहादुर के दीवान हैं और 'वफ़ा' साहब गंगा नदी के बाज़ परगनों की तहसील वसूल में मसरूफ़ हैं। हर कमाल को तलब कर रहे हैं।'

- (मख़्ज़ने-निकात, पृ. 80)

मुंशी ख़ैरातीलाल 'बेजिगर' ने अपने तज़्किरे में उनके हालात इस तरह बयान किये हैं-

''लाला नवलराय क़ौम कायस्थ भटनागर मुरादाबादी। क़ायम चांदपुरी के शागिर्द थे। उनके अम्मे-आली (चाचा) वक़ार राजा गुलाबराय सरकार नजीबुद्दौला के दीवान थे। 'इश्क़' मेरठी ने उनसे मुलाक़ात की थी और निम्नलिखित मतला उनकी ज़बानी सुना था-

न होवें महवे-सफ़्ली रिंद दुर्द आशाम की आंखें
कि सारी उम्र उसने देखियां हैं जाम की आंखें

- (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड, भाग-4, पृ. 2721-24)

कलाम का नमूना

होने को दिल सहज ही गिरफ़्तार हो गया
अब छूटना ये ज़ुल्फ़ से दुश्वार हो गया
समझे सफ़ा-ए-शुस्त तेरी चश्म को वही
जिसके जिगर से तीरे-निगह पार हो गया
ऐसे मिज़ाज भी कहीं देखे हैं ऐ 'वफ़ा'
क्या बात थी जो रात वो बेज़ार हो गया

\+ + +

आरिज़ पे तुम्हारे यह पसीना
हीरे का है लाल पर नगीना
ग़म में भी अगर रहा सलामत
पत्थर से भी सख़्त है यह सीना

\+ + +

उसको मंज़ूर यां से जाना था
गिरिया मेरा फ़क्त बहाना था
दिल न करना था इस तरह से ख़राब
आक़िबत वो तेरा ठिकाना था

\+ + +

यां तक अज़ ख़्वेश रफ़्ता हूँ कि मुदाम
आप करता हूं मैं सुराग़ अपना

\+ + +

हबाब आसा न फूल हस्ती पे अपनी
कि ग़ाफ़िल क्या भरोसा है नफ़स का

\+ + +

बुत से लेते हैं कारे-हक़ हज़रत
शेख़ टुक देख ऐतक़ादे-हुनूद

\+ + +

होवेगा दिल से महवे-ग़मे-यार कब तलक
क्यों हमनशीं ये जायेगा आज़ार कब तलक

\+ + +

बस कि अपने इंक़लाबे-बख़्त से डरते हैं हम
बिस्तरे-गुल पर भी लरज़ां ही क़दम धरते हैं हम
कल का वादा कर गया उनसे जो ऐ मैहरम तो क्या
यां तो बेताबी से दिल की आज ही मरते हैं हम

\+ + +

बेचे है इक निगाह पे दिल के तईं 'वफ़ा'
लेना हो गर तुम्हें तो कुछ इतना गिरां नहीं

\+ + +

अपनी ही चश्म के तईं ताबे नज़र नहीं
वरना वो आफ़ताब कहां जलवागर नहीं

\+ + +

साथ तुझसे के अगर महरे-वफ़ा की हमने
अफ़्व कर अफ़्व कि ऐ शोख़ ख़ता की हमने
उक़्दे पर उक़्दे किये चर्ख़ ने मज़बूत अगर
इक गिरह रिश्ता-ए-मक़सूद से वा की हमने
डर है उस वक़्त का ज़ालिम कि लहू बल मुंह से
जिस घड़ी रू ब-फ़लक होके दुआ की हमने

\+ + +

दिल तो कहे है जी में गिरफ़्तार कीजिए
यानी किसी सनम के तईं प्यार कीजिए
गर मांगता है जी के तईं दीजिए 'वफ़ा'
क्या चीज़ है कि दोस्त से इनकार कीजिए

\+ + +

अदम के जाने से क्या हैफ़ है अज़ीज़ां के
कि कूच उधर ही को है सुब्हो-शाम अपना भी

\+ + +

फ़िर दमे सर्द जो दिल हो न सके गर्मे फ़ुग़ाँ
शग़्ल थोड़ा भी भला होवे है बेकारी से
कूचा-ए-इश्क़ की है राह ख़तरनाक 'वफ़ा'
जो क़दम यां तू रखे यार तो हुशियारी से

\+ + +

किस गुले-ताज़ा ने इस बाग़ में की जलवागरी
हम ज़रे-दाग़ से जिसके न ख़रीदार हुए

\+ + +

जूं अश्क न फिर उठा ज़मीं से
या रब मैं गिरा हूं किस नज़र से
आने का मेरे वो सुनके चर्चा
निकला न तमाम रोज़ घर से

\+ + +

क्यों तू करता है गोर से नफ़रत
आख़िर इक दिन वही ठिकाना है

\+ + +

इश्क़ में इम्तियाज़े-रुतबा नहीं
ख़ाकपा-ए-अयाज़ है महमूद

\+ + +

पूछो हो क्या कि हाल तेरा किस तरह से है
क्या जानते नहीं हो मियां जिस तरह से है

\+ + +

है जलवागर वो हममें, पर आलूदगी से दूर
जिस तर्ह अक्स आब में हो माहताब का

\+ + +

देना तो दिल न आपको मक़्सूद था व लेक
जब मिल गई ये आंख मैं नाचार हो गया

डा. फ़हमीदा ख़ान, 'वफ़ा' के कलाम पर तब्सिरा करते हुए लिखती हैं-

'वफ़ा' के हासिल शुदा कलाम को देखने से अंदाज़ा होता है कि उनकी ज़बान में सफ़ाई, सादगी और सलासत है और अशआर में अक्सर दाख़िलयत और सोज़ो-गुदाज़ का ग़लबा है।

'वफ़ा' के कलाम में कहीं-कहीं मतरूकात भी नज़र आते हैं, जिनकी मौजूदगी बिल्कुल फ़ितरी है, क्योंकि उनका कलाम जिस ज़माने की यादगार है, उस ज़माने में ये तमाम लफ़्ज़ राइज थे। ऐसे चन्द अल्फ़ाज़ सहज (आसान या आसानी से), फूलना (मग़रूर होना), तलक (तक) वग़ैरा हैं।

- (शोअरा-ए-मुरादाबाद की अदबी ख़िदमात, पृ. 17-18)

'वक़ार' राजा कुंवर किशनकुमार

राजा किशन कुमार का तख़ल्लुस 'वक़ार' और वालिद का नाम राय प्रद्युम्न किशन तख़ल्लुस 'हादी' था। 'वक़ार' मुंशी अनवार हुसैन तस्लीम सहसवानी के शागिर्द थे। उर्दू और फ़ारसी दोनों ज़बानों में निपुणता प्राप्त थी और दोनों ज़बानों में शायरी भी करते थे। उनका दीवान 1877 ई. में प्रकाशित हुआ था, जिसे मैंने मुस्लिम पब्लिक लाइब्रेरी मुरादाबाद में देखा था।

शायां बरेलवी के मुताबिक़- ''आपके मौरिसे-आला (पूर्वजों) को मुग़ल बादशाह मुहम्मद शाह ने मुरादाबाद में ओहदा-ए-वकालत पर फ़ाइज़ किया था। उस वक़्त से आपके ख़ानदान का मुरादाबाद में क़याम हुआ। आपके जद् बुज़ुर्गवार राय आत्माराम अहदे-नवाब आसिफ़ुद्दौला में चकलादार बिजनौर मुक़र्रर हुए और ईस्ट इंडिया कम्पनी ने मुंशी

अदालत मुक़र्रर किया। उन्होंने मुलाज़िमत तर्क करके अज़ला-ए-मुरादाबाद, बिजनौर व बदायूं में तालुक़ा ख़रीदा जिसमें रोज़ अफ़ज़ूं तरक़्क़ी हुई। उनके फ़रज़ंद राय प्रद्युम्न किशन ने 1857 ई. में अंग्रेज़ी हुकूमत की ख़ैरख़्वाही की, जिसके सिले में तीन हज़ार रुपये जमा की ज़मींदारी मिली। उनके बेटे किशन कुमार को राजा का ख़िताब मिला । आप बड़े आली हौसला और साहिबे-हिम्मत थे।''

– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड, भाग-4, पृ. 2852)

राय कुंवर किशनकुमार 'वक़ार' पुत्र श्री राय प्रद्युम्न किशन 'हादी' मुरादाबादी की रस्मे-ताजपोशी दिनांक 11 दिसम्बर 1882 ई. के सिलसिले में एक जश्न किया गया, जिसमें बहुत से शायरों ने इनकी तारीफ़ में क़सीदे कहे। मुरादाबाद के शायरों में इम्तियाज़ अली 'इम्तियाज़', जमशेद अली 'जम', हाफ़िज़ मुहम्मद हशमत अली 'हशमत', सैयद नज़ीर शाह 'रसा', जाफ़र अली 'तरीक़', फ़रीदुद्दीन 'फ़िदवी', पंडित कामता प्रसाद 'सरवर' डिप्टी कलेक्टर, मुरादाबाद और मुंशी अमजद अली 'अमजद' मालिक अख़बार नैयरे-आज़म ने शिरकत की। इन क़सीदों का मजमूआ राजा साहब के पेशकार मुंशी पीतमराय साहब शागिर्द अनवार हुसैन 'तसलीम' ने 'मद्हिया-ए-वक़ार' के नाम से 1309 हि. /1891 ई. में मतलाउलउलूम मुरादाबाद से मुंशी अमजद अली मालिक अख़बार नैयरे-आज़म की सरपरस्ती में प्रकाशित की। यह किताब मेरे (लेखक के) पुस्तकालय में मौजूद है।

मुलाहिज़ा फ़रमाइये 'वक़ार' का चुनिंदा कलाम-

किस वास्ते लड़ते हैं बहम शेख़ो-बिरहमन
काबा न किसी का है, न बुतख़ाना किसी का

+ + +

'वक़ार' उस्ताद हैं तसलीम मेरे
मैं हूं पाबन्द तसलीमो-रज़ा का

+ + +

चश्मे-वहदत से बुतकदे में भी
मुझको हर बुत ख़ुदा नज़र आया

\+ + +

जबसे देखा है रू-ए-यार 'वक़ार'
आइना अपने होश से गुज़रा

\+ + +

उम्मीद पर रिहाई की तोड़ा क़फ़स में दम
थी आमदे-बहार न हमसे रहा गया

\+ + +

इन बुतों के अगर ज़बां होती
दावा कर बैठते ख़ुदाई का

\+ + +

चाहता है मंज़िले-मक़सूद की पुरख़ार राह
पा-ए-शौक़ आसां तलब है और दिल मुश्किल तलब

\+ + +

जोशे-जुनूं ने आते ही फ़स्ले-बहार के
फ़ैलाए पांव दामने-कोह्सार की तरह

\+ + +

राह से इश्क़ो-मुहब्बत की है तू भी आगाह
एक दिन पूछेंगे हम ख़िज़्र से तनहा मिलकर

\+ + +

नहीं है दिल में हवा-ओ-हवस की गुंजाइश
हमारे घर में कहां ख़ारो-ख़स की गुंजाइश

\+ + +

हमसे रखता है वो सनम इख़्लास
रखते हैं उसके ग़म से हम इख़्लास

\+ + +

याद से, दिल से शादमां महफ़ूज़
ज़िक्र से तेरे है ज़बां महफ़ूज़

+ + +

क़िस्सा-ए-हुस्न लनतरानी है
रब्बे-अरनी है इक फ़साना-ए-इश्क़

+ + +

ज़माने से हमारा उठ गया दिल
हुए जबसे तुम्हारे हमनशीं हम

+ + +

वाइज़ है मुझे आरज़ू-ए-कूचा-ए-जानां
वो और हैं जो मरते हैं जन्नत की हवस में

+ + +

नेस्ती जलवागर है हस्ती में
कुछ अदम का मेरे वजूद नहीं

+ + +

मन्नतकशे-जवाब न होगा मेरा सवाल
उनके दहन नहीं है तो मेरे ज़बां नहीं

+ + +

बुतकदा हो गया ख़ुदा का घर
क्या ही वज़्-ए-ज़माना बरहम है

+ + +

पामाले-ख़रामे-नाज़ कीजिए
ठुकराइये सरफ़राज़ कीजिए

+ + +

छुट गया मैं अज़ाब से तूने
क़त्ल करके सवाब लूटा है

+ + +

है हक़ीक़ी मेरा मजाज़ी इश्क़
बुतपरस्ती में हक़ परस्ती है

\+ + +

ख़ाना-ए-दिल में है ख़याले-सनम
ये वो काबा है जिसमें मूरत है

\+ + +

ज़ुल्फ़े-पेचीदा एक मज़रा' है
सब्ज़ा-ए-ख़त नई इबारत है

चन्द अशआर फ़ारसी-

किशनकुमार 'वक़ार' को उर्दू के साथ-साथ फ़ारसी ज़बान व अदब पर भी उबूर हासिल था। हिलाज़ा चन्द अशआर फ़ारसी के भी मुलाहिज़ा कीजिए-

जानम ब-लब आमद ऐ ख़ुद आरा
रहमे-बर हाले-मन ख़ुदारा

\+ + +

तल्ख़ काम कोह कुन राइश्क़ शोर अंगेज़ कर्द
पर ग़लत गोयंद शीरीं कर्द या परवेज़ कर्द
तरके इश्क़ बाइसे आज़ार मन शुद-ए-'वक़ार'
वरना सेहत आशना बीमार रा परहेज़ कर्द

\+ + +

चू ब-याद ज़ुल्फ़ कसे कार दारम
मसारीअ पेचां दर अशआर दारम

- (सुबहे-गुलशन, पृ. 598)

‘हादी’ राय प्रद्युम्न किशनकुमार

राय प्रद्युम्न किशनकुमार पुत्र श्री आत्माराम मुरादाबाद के रईस थे। मुरादाबाद और बदायूं के इलाक़ों के ज़मींदार भी थे। उनके पूर्वजों को मुहम्मद शाह बादशाह ने ‘राय’ के ख़िताब से नवाज़ा था और ऊंचे ओहदे दिये थे। राय साहब को शेरो-शायरी से भी शौक़ था। ‘हादी’ तख़ल्लुस था।

ग़ज़ब है, उससे इरादा है आशनाई का
जहां में शोह्रा है जिस बुत की बेवफ़ाई का
हमारे दिल का न निकला कोई भी अरमां हाय
शबे-विसाल भी खटका रहा जुदाई का
निगाहे-शौक़ से हो जायेगा जहां बरबाद
रहा जो तौर यही उसकी कज अदाई का
लगाके आग जला दे जो चर्ख़ ज़ालिम को
तो मोतक़िद होऊं मैं उसकी आह रसाई का
वहां रक़ीब हैं दिलशाद उनके वस्ल से आह!
यहां रुलाता है हमको अलम जुदाई का
उठे हैं काबे से अंजाम देखिए क्या हो
हुआ है क़स्द दरे-बुत पे जुब्बा साई का
ग़ज़ब हुआ वो लगाते हैं मेहंदी हाथों में
अब उनकी तेग़ से ख़ूं होगा एक ख़ुदाई का
ये हम न कहते थे ‘हादी’ न दिल लगाओ कहीं
नतीजा देख लिया तुमने आशनाई का

(1857 ई. के ग़द्दार शोअरा, पृ. 165-168.

‘हरी’ मुरादाबादी

हरिप्रसाद नाम और तख़ल्लुस ‘हरी’ था। ‘बदर’ जलाली के शागिर्दों में से थे। इसके अलावा दीगर हालात और कलाम दस्तयाब नहीं हो सका।

– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड, भाग-4, पृ. 2970)

‘होश’ मुरादाबादी

मुंशी शिव नारायण और तखल्लुस ‘होश’ था। मुरादाबाद के रहने वाले थे। मुंशी गेंदनलाल ‘गौहर’ बदायूं उन्हीं के शागिर्द थे।

– (हिन्दू मसनवीनिगार, पृ. 172)

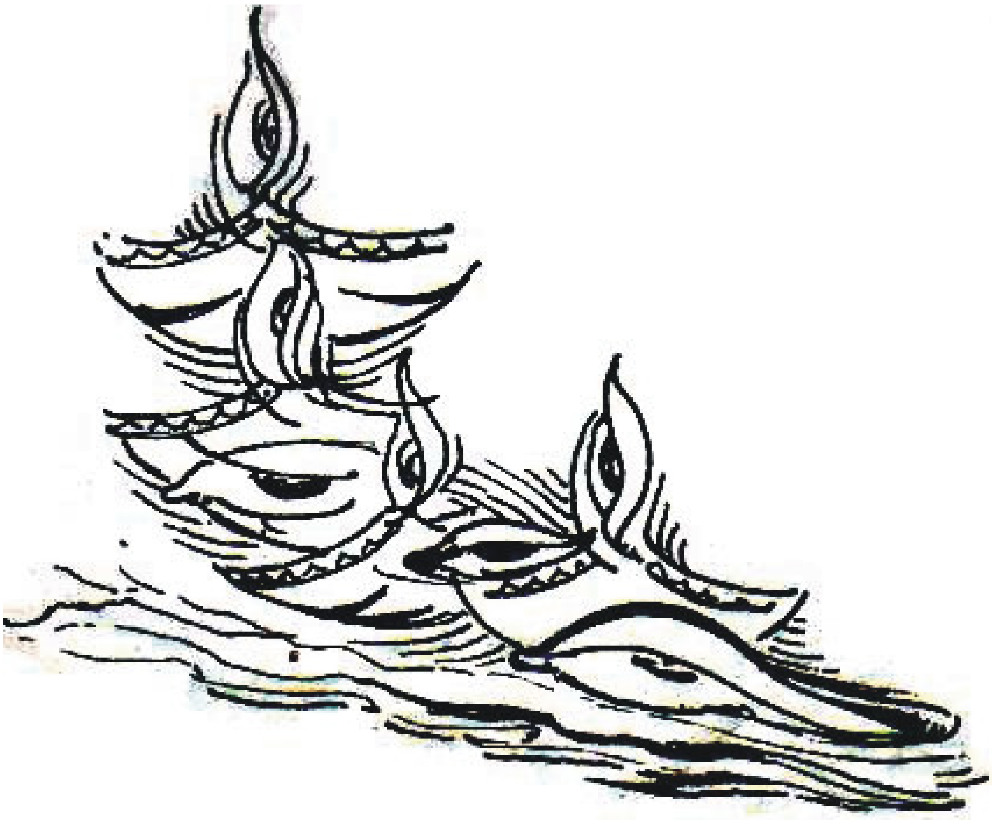
‘यक्ता’ मुरादाबादी

ए. नीवल मज़हबन ईसाई थे, जो अपने मज़हब पर कारबन्द थे बल्कि पादरी थे। शेरो-शायरी का शौक़ शुरू से था। जनाब ‘बरबाद’ मुरादाबादी के शागिर्द थे। ‘यक्ता’ तख़ल्लुस रखते थे। कोई कलाम दस्तयाब नहीं हो सका ।

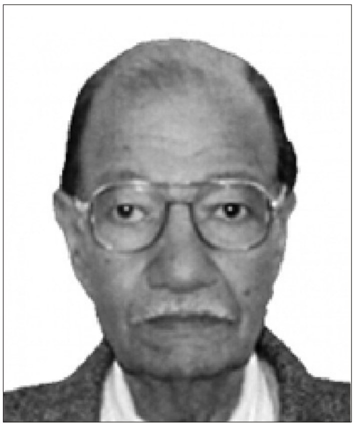
– (तज़्किरा-ए-शोअरा-ए-रुहेलखण्ड, भाग-4, पृ. 3398)

रोशन चिराग़

उन शायरों का ज़िक्र
जो आज भी
गेसू-ए-सुख़न सँवारने में मसरूफ़ हैं।



'माहिर' मुरादाबादी



नाम कैलाशचन्द्र माथुर और तख़ल्लुस 'माहिर'। मुरादाबाद के मुहल्ला नई बस्ती में 8 अक्टूबर 1928 ई. को एक ख़ुशहाल और आला ख़ानदान में पैदा हुए। वालिद का नाम रामचन्द्र माथुर था जो कायस्थों में अहम लोगों में शुमार किये जाते थे ।

'माहिर' के बारे में धर्मेन्द्रनाथ ने अपनी किताब 'हमारे रसूल' में लिखा है- ''माहिर साहब की इब्तेदाई तालीम मक्तब में हुई । 1943 ई. में पार्कर कॉलिज से हाईस्कूल के इम्तिहान में आला नम्बरों से कामयाबी हासिल की। 1946 ई. में इण्टरमीडिएट करने के बाद इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में दाख़िला लिया। जहां डाक्टर एजाज़ हुसैन और जनाब ज़ामिन अली 'ज़ामिन' जैसे असातिज़ा (उस्तादों) की सरपरस्ती हासिल हुई। रिसाला 'नेस्तां' के नायब मुदीर (सह संपादक) की हैसियत से ख़िदमात अंजाम दीं। यहां रह कर 'फ़िराक़' गोरखपुरी से भी मुतास्सिर हुए। 1948 ई. में इलाहाबाद को अलविदा कह कर मुरादाबाद आ गये और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में मुलाज़िमत कर ली। साथ ही तालीमी सिलसिला भी जारी रखा। मआशियात (अर्थशास्त्र) में दाख़िला लिया और आगरा यूनिवर्सिटी से फ़र्स्ट ड़िवीज़न में एम.ए. और एल-एल.बी. के इम्तिहान पास किये और दर्सो-तदरीस (शिक्षण) से मुंसलिक हो गये। मुरादाबाद, धामपुर और रायबरेली के कालिजों में लेक्चरर की हैसियत से ख़िदमात अंजाम दीं। 1955 ई. में हुकूमते-हिन्द की मिनिस्ट्री ऑफ़ इंडस्ट्रीज़ में मुलाज़िमत हासिल कर ली। 22 साल फ़राइज़े-मंसबी निभाये। मुम्बई और कानपुर में अपनी ख़िदमात देते हुए 1976 ई. में रियासत सिक्किम में डायरेक्टर ऑफ़ इंडस्ट्रीज़ के ओहदे पर मामूर रहे। मुलाज़िमत के दौरान तीन मर्तबा दूसरे मुमालिक गये। 1986 ई. से देहली में क़याम पज़ीर हैं और

हाईकोर्ट में वकालत के पेशे में मुमताज़ हैसियत के मालिक हैं। आप मुमताज़ शायर और अहम नस्र-निगार हैं। आपके तीन मजमूए शाया हो चुके हैं- 'लम्से हवा' (ग़ज़लें-1982), 'लमहा-लमहा प्यास' (नज़्में-1991) और कामाक्षी (शायरी-2005)। आपका नया मजमूआ-ए-कलाम 'ख़्वाब मत देखो' जुलाई 2008 ई. में मंसा-ए-शहूद पर आया (प्रकाशित हुआ)। आपने तर्जुमे के मैदान में भी अपनी सलाहियत और मालूमात के सबब नाम कमाया है। पहाड़ और साहिल 1967 ई. में मक़बूलियत हासिल कर चुके हैं। आपके कलाम में बालिग़ नज़री और बसीरत, रुमूज़े ज़बान से गहरी वाक़्फ़ियत है। लहजे में सादगी और पुरकारी है। - (हमारे रसूल पृ. 522)

मैं (लेखक) अपनी मसरूफ़ियत के बाइस मजमूआ हाय कलाम तक रिसाई हासिल नहीं कर सका। जो कलाम बा-आसानी दस्तयाब हो सका, उसे पेश किया जा रहा है। मुलाहिज़ा फ़रमाइए-

नात

कोनो-मकां में होता है चर्चा रसूल का
नबियों में सर-बुलन्द है रुतबा रसूल का
ऐ चश्मे-इंतज़ार न हो इस क़दर मलूल
महशर के रोज़ देखना जलवा रसूल का
सजदे में सर निगूं हैं जहां सारे मेहरो-माह
ऊंचा हिमालया से है पाया रसूल का
नाहक़ के आगे सर न झुकाना मुजाहिदो
ये दर्स दे गया है नवासा रसूल का
पहचान जब अता हुई लफ़्ज़ो-बयान की
पहले क़लम ने नाम लिखा था रसूल का
जी चाहता है जाके उसी दर से मांगना
मां की ज़बां से ज़िक्र सुना था रसूल का

'माहिर' वो ख़ुशनसीब हैं दुनिया में किस क़दर
आता है जिनके नाम बुलावा रसूल का

\+ + +

जाने क्या सोच के हम तुझसे वफ़ा करते हैं
क़र्ज़ है पिछले जनम का, सो अदा करते हैं
क्या हुआ जाम उठाते ही भर आईं आंखें
ऐसे तूफ़ान तो हर शाम उठा करते हैं
दिल के ज़ख़्मों पे न जाओ कि बड़ी मुद्दत से
ये दिये यूं ही सरे-शाम जला करते हैं
कौन है जिसका मुक़द्दर न बनी तनहाई
क्या हुआ हम भी अगर तुझसे गिला करते हैं
रिश्ता-ए-दर्द की मीरास मिली है हमको
हम तेरे नाम पे जीने की ख़ता करते हैं

\+ + +

सदाएं आख़िरे-शब की

मेरा हमज़ाद मुझसे पूछता है

सर्द सन्नाटों के मौसम में
तुम्हारा नाम क्या है तुम कहां के रहने वाले हो
तुम्हारी बदनुमाई, रूसियाही का सबब क्या है
मेरा हमज़ाद मुझसे पूछता है

मैं कहता हूं कि मेरा नाम रामौतार है मथुरा का वासी था
मगर अब तो इलाहाबाद मसकन है
मैं कहता हूं कि मेरा नाम नानक सिंह
वतनलाहौर था
मगर अब तो जलंधर मेरा मसकन है

मैं कहता हूं मुझे नूरे-इलाही के मुक़द्दस नाम से
सब याद करते हैं
वतन अजमेर था पहले
मगर अब तो अहमदाबाद मसकन है
मेरा हमज़ाद मुझसे पूछता है

तुम्हारा नाम नानक सिंह है तो
तुम्हारे नाम से क्यों गुरुद्वारे कांप उठते हैं
शबद साकित हुए कबसे

तुम्हारा नाम रामौतार है तो
तुम्हारे नाम से क्यों देवता पथरा गए सारे
गजर क्यों अब नहीं बजते

तुम्हारा नाम है नूरे-इलाही तो
अज़ां पांचों पहर क्यों मस्जिदों में अब नहीं होती
नमाज़ी क्यों नहीं आते

मेरा हमज़ाद मुझको घूरता है ख़ून आलूदा निगाहों से
तुम्हारा नाम नानक सिंह, रामौतार या नूरे-इलाही है
तो फिर ये आस्तीनों में लहू आलूदा ख़ंजर किसलिए हैं
दुहाई क्यों तुम्हारे नाम की देती हैं ये जलती चिताएं
सरनिगूं सर पीटती मांएं

तड़पकर चीख़ता है मुझसे फिर हमज़ाद कहता है
ग़लत है, तुम कि नानक सिंह, रामौतार या नूरे-इलाही हो
मुझे तो एक ही चेहरा नज़र आता है इन नामों के परदे में
तुम्हीं ने गुरुद्वारों, मंदिरों और मस्जिदों को

क़त्लगाहों में बदल डाला
तुम्हीं ने नस्ले-आदम को ख़ुदा के नाम पर-
ऐसे तशद्दुदरेज़ख़ानों में समोया है
तुम्हारी रू-सियाही बदनुमाई का सबब ये है
कि तुम इबलीस के बेटे हो और मग़रिब के साकिन हो
तुम्हारे ख़ूंचुकां इस मर्ग-आसा खेल की ये आख़िरी शब है

मेरा हमज़ाद कहता है ये चुपके से
भुला दो तुम कि नानक सिंह, रामौतार या नूरे-इलाही हो
मुखौटा तोड़ दो
और सुब्ह की आंखों में अपना नाम पढ़ लो
तुम्हारे मर्ग-आसा खेल की ये आख़िरे-शब है

(साभार : रेख़्ता डॉट ओआरजी)

\+ + +

मैं अकेला ही नहीं रुसवा सरे-महफ़िल यहां
मेरे अफ़साने में शामिल तेरा अफ़साना भी है
कौन जाने किस तरफ़ उठ जायें अब 'माहिर' क़दम
अज़्मे-तौबा भी है दिल में, इज़्ने-मयख़ाना भी है

– (हफ़्तरोज़ा मुख़बिरे-आलम बाबत एक दिसम्बर 1954)

\+ + +

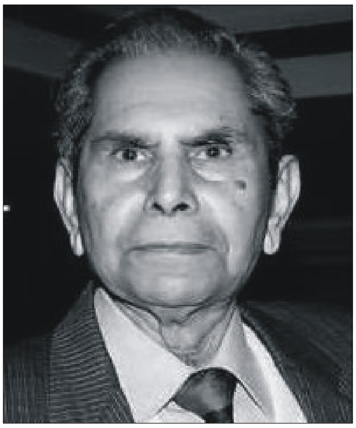
अजीब शह्र है, परछाइयां चमकती हैं
हर अजनबी मुझे लगता है आशना की तरह

\+ + +

अपनी रुसवाई है शह्रों-शह्रों
बेगुनाही की सज़ा हो जैसे

– डा. आबिद हैदरी : मेरे तज्ज़ियाती औराक़, पृ. 119

रोलेंड 'लारेंस'



रोलेंड लारेंस वल्द ई. दास 1935 ई. में रामपुर में पैदा हुए। पैदाइश के कुछ अर्से बाद उनके वालिद का इंतक़ाल हो गया। उनकी परवरिश उनकी वालिदा रीचल ने की। उन्होंने रज़ा पोस्ट ग्रेजुएट कालिज रामपुर से बी.एस-सी. और बरेली कालिज से एम.एस-सी. किया। 8 अक्टूबर 1960 ई. में पारकर इंटर कालिज, मुरादाबाद में रयाज़ी (गणित) के लेक्चरर हुए। 35 साल दर्सो-तदरीस (शिक्षण) की ख़िदमात अंजाम देने के बाद 1995 ई. में अपने ओहदे से रिटायर हुए। आख़िरी अठारह साल वह कालिज के वाइस प्रिंसिपल भी रहे।

- (मुदर्रसीन मुरादाबाद और उर्दू शायरी पृ. 114)

उर्दू से उन्हें शुरू ही से लगाव था, बल्कि वह उर्दू को ही अपनी मादरी ज़बान (मातृभाषा) मानते हैं। जैसा कि आबिद रज़ा 'बेदार' को लिखे ख़त में वह खुद लिखते हैं- ''मंतक़ी इज़हार की ज़बान तो अंग्रेज़ी थी, लेकिन जज़्बात की ज़बान, मेरी मादरी ज़बान उर्दू के सिवा और कोई ज़बान नहीं बन सकती थी। सो कूपर (Cowper) भी उसमें ढला। फिर मेरा हर जज़्बा, कभी आह, कभी ख़लिश, कभी उलझन, कभी ज़ब्त, कभी चीख़, कभी शोर, कभी कराह, कभी आंसू और कभी अपने ऊपर ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया पर दिल खोल कर हंसने में ढलता चला गया। जज़्बा लफ़्ज़ बना, लफ़्ज़ मिसरे और फ़िर शेर बनते गये। जो आपके सामने हैं।'' (गाहे-गाहे, पृ. 8)

'लारेंस' ने पहली ग़ज़ल 1960 ई. में कही और बक़ौल आबिद रज़ा 'बेदार'- उनकी फ़िक्र इससे बहुत पहले शेर में ढलने लगी थी। यह मालूम नहीं हो सका कि इस फ़न में उन्होंने किस शख़्स से इस्लाह ली, यानी अपना उस्ताद किसे बनाया। अलबत्ता उनके मजमू-ए-कलाम

'गाहे-गाहे' का आग़ाज़ अर्शीज़ादा के एक ख़त से होता है जिसमें उन्होंने इस ग़ज़ल में इस्लाह की है-

सबा जो निकहतें हमराह अपने लाई है

'लारेंस' ने ग़ज़लों के साथ नज़्में भी कही हैं। उनकी नज़्में माहनामा 'ख़याल', माहनामा 'शाहराह देहली' और माहनामा 'किताब' लखनऊ में छपीं। रोलेंड 'लारेंस' को फ्रांस के मशहूर शायर विलियम्स कूपर से ख़ास लगाव है, इसीलिए उन्होंने कूपर की नज़्मों का उर्दू तर्जुमा किया। इस तर्जुमे के तअल्लुक़ से आबिद रज़ा 'बेदार' लिखते हैं- ''मैंने पहली मर्तबा लारेंस को, कूपर को उर्दू में ढलते देखा तो क़दरे-हैरत हुई। लगता था कूपर ने नज़्म को असलन उर्दू ही में लिखा है। फिर कूपर की एक और नज़्म उर्दू में ढली हुई मिली। ख़याल आया कि अस्ल कूपर को सामने रखकर लारेंस को पढ़ा जाये। पढ़ा, तो लुत्फ़ दोबाला हो गया।'' - (गाहे-गाहे, पृ. 9)

बाद में उन्होंने ईमला जोला के ''जोलैन' का अंग्रेज़ी से उर्दू में अनुवाद किया। उनके लिखने की रफ़्तार इतनी सुस्त है कि 1960 से 1995 ई. तक 35 साल की मुद्दत में 1995 ई. में उनका पहला मजमुआ-ए-कलाम 'गाहे-गाहे' प्रकाशित हुआ। जिसे पहले ख़ुदाबख़्श ओरियंटल पब्लिक लाइब्रेरी पटना ने प्रकाशित किया और फिर मक्तबा जामिया लिमिटेड, जामिया नगर नई दिल्ली से छपा, जो सिर्फ़ 64 पृष्ठ में है। 1996 ई. में उन्हें उत्तर प्रदेश उर्दू अकादमी ने एवार्ड से नवाज़ा।

मुलाहिज़ा कीजिए लारेंस की पहली ग़ज़ल-

सबा जो निकहतें हमराह अपने लाई है
किसी की ज़ुल्फ़ की फिर याद हमको आई है
शुआएं फूटती हैं नक़्शे-पा के ज़र्रों से
ख़रामे-नाज़ ने क्या कहकशां बनाई है
हमारे सब्रो-तहम्मुल का इम्तिहां लेने
हज़ार बार शबे-हिज्रे-यार आई है

जो बज़्मे-यार में ज़िक्रे-वफ़ा हुआ है कभी
ज़बाने-ग़ैर से हमने भी दाद पाई है
सितम शिआर का चेहरा उतर गया है वहीं
जो दास्ताने-शबे-ग़म कभी सुनाई है
जुनूं ने उलझे मसाइल का हल निकाल लिया
ये किससे अहले-ख़िरद तुमने मात खाई है

+ + +

मुद्दआ अपना दिल आज़ारी-ए-ख़ूबां भी नहीं
बस इसी दर्द का हो जाऊँ ये इमकां भी नहीं
ग़म से फ़ुर्सत भी नहीं, दर्द का दरमां भी नहीं
मैं मगर गर्दिशे-पैहम से हिरासां भी नहीं
आंख नमनाक नहीं चेहरा परेशां भी नहीं
और उस ज़ब्ते-मुसलसल पे मैं नाज़ां भी नहीं
ग़ुंचा शादाब नहीं, गुल भी नहीं रंग अफ़्शां
अब मुझे शिकवा-ए-कोताही-ए-दामां भी नहीं
रहनुमाओं ने मेरे दिल को कहां छोड़ दिया
जादा-ए-शौक़ में मुद्दत से चिराग़ां भी नहीं
जो भी चाहे वो उसे अपना फ़साना कह ले
दास्तां से मेरी अंदाज़ा-ए-उनवां भी नहीं

+ + +

प्यार रहमत है, इनायत है, ज़रूरत भी है
ये हक़ीक़त मैं तुझे याद दिलाऊँ कैसे

+ + +

दिल ने फिर एक कुनबा जोड़ा, याद किये बीते अफ़साने
यारों की यारी को तोला, ज़ख़्म कुरेदे नये-पुराने
फिर भी मूरख मन यूं बोला कौन ग़लत था, तू क्या जाने
वक़्त भी उलझी चाल चले जब, लाख दुखों के लाख बहाने

+ + +

दिल कि तारीक इक मकाँ-सा है
तुझसे रोशन था ये गुमां-सा है
कोई कैसे यक़ीन कर लेता
वाक़या भी तो दास्तां-सा है
आओ चलकर ज़रा उधर देखें
बस्तियों में अभी धुआं-सा है
पहला पत्थर हमीं पे उट्ठेगा
दिल में इक ख़ौफ़ ये निहां-सा है
उसको रोको कि कोई बात बने
अजनबी ये तो राज़दां-सा है
फिर क़फ़स में किसी ने दम तोड़ा
सिलसिला ये तो जावेदां-सा है
उसकी सहमी ज़बान का लहजा
किसी दरवेश के बयां-सा है
मुझको जंगल की राह दिखलाकर
आज हर शख़्स शादमां-सा है

\+ + +

दिल की हालत तो आशकारा है
फिर भी अस्लूब को संवारा है
तुम नमकपाशियों से रंग भरदो
हमने भी ज़ख़्मे-दिल निखारा है
कौन हम-सा है जां-निसारों में
तुमने क्यों ज़ुल्फ़ को संवारा है
गाहे-गाहे हमारा ज़िक्र चले
बस ये रिश्ता हमें गवारा है

और ख़लिश बढ़ने दे

(विलियम कूपर की नज़्म का कविताबद्ध अनुवाद)

वो तेरी ज़ुल्फ़े-परीशां, वो निगाहे-मग़मूम
वो अलामाते गिरां बारी-ए-ख़ातिर जिनको
मेरी मेहबूब तेरी कोशिशे-नाकाम कभी
यूं पसे-पर्दा-ए-ज़ुल्मात न रख पायेगी
जबकि हसरत को जनम देते हों नाज़ुक जज़्बे
तू भी दो चार घड़ी अश्क रवां रहने दे
नीम शफ़्फ़ाफ़ वो मोती वो लरज़ते आँसू
जिनसे इक सिलसिला-ए-रब्ते-मुहब्बत है मुझे
इससे पहले कि मिले उनको ज़मीं की आग़ोश
आ, क़रीब आ कि ये अमृत मुझे पी लेने दे
फ़ासले लाख बढ़ें पर ये वफ़ा के अंदाज़
है इन्हीं पर मेरी उम्मीद की दुनिया क़ायम
इतनी पुरसोज़ है जब अपनी जुदाई की घड़ी
हर तरफ़ कैफ़ लिए अपना मिलन आयेगा
किस क़दर सख़्त है पत्थर की गिरां सिल की तरह
दिल, कि जो नाज़ुकी-ए-सोज़ से मानूस नहीं
जिसमें बरफ़ाब फ़िज़ाओं का फ़ुसूं तारी है
जिसमें इक रंजिशे-बेजा के सिवा कुछ भी नहीं
तू मगर दर्द को उल्फ़त का सहारा दे दे
और इज़हार जब एहसास का दामन थामे
तू भी हर सोज़िशे पिनहां को फ़रोज़ां कर दे
हां अभी और अभी और ख़लिश बढ़ने दे

तजदीदे-वफ़ा

(विलियम कूपर की नज़्म का कविताबद्ध अनुवाद)

किस क़दर सख़्त है रफ़्तारे-ज़माना कुछ सोच
उसके धारे पे मुसर्रत का गुज़र भी तो नहीं
ग़मो-अंदोह के तारीक घने सायों में
कहीं हम प्यार की घड़ियों को न ज़ाया करदें

अपनी सीमाबी-ए-फ़ितरत से किनारा करले
चन्द लमहे हैं यही प्यार भरे अपने रफ़ीक़
इनको ठुकराके हमें चैन न मिल पायेगा
दामने-ग़म का कोई चाक न सिल पायेगा

तेरी आखें कि जिन्हें प्यार किया है मैंने
जिनपे ठहरी हैं निगाहें मेरी अक्सर जाकर
मेरी जुरअत पे न रूठेंगी यकीं है मुझको
उनके आंचल में कोई ग़म नहीं लहरायेगा

मेरी बेबाकियां, मालूम है मुझको ऐ दोस्त
तुझको नफ़रत पे न मजबूर करेंगी हरगिज़
आज भी तेरे करम पर है भरोसा मुझको
आज फिर तेरी इनायत का तलबगार हूं मैं

आ शबो-रोज़ को रंगीन बना लें कुछ देर
सारी बे-कैफ़ी-ए-अय्याम मिटालीं कुछ देर
तुझसे दूरी में तबाही के सिवा कुछ भी नहीं
इक शिकायत की सियाही के सिवा कुछ भी नहीं

जबकि आलामो-मसाइब हैं मुक़द्दर अपना
दामने-ज़ब्त को हम हाथ से क्यों जाने दें
वक़्त ने हमको संभलने की इजाज़त दी है
क्यों गुज़र जायें ज़माने से किनारा करके

ज़माना गुज़रा मगर मैं फ़रार पा न सका
वो इल्तेफ़ात का लमहा अजीब बन्धन है

विजय त्यागी



विजयप्रकाश त्यागी। 'त्यागी' तख़ल्लुस। 03 जनवरी 1938 ई. को ग्राम रतूपुरा, तहसील संभल, ज़िला मुरादाबाद (वर्तमान में ज़िला संभल) में पैदा हुए। वालिद का नाम श्री जगदीश नारायण त्यागी था। इनके चाचा रघुधीश नारायण भी अच्छे शायर थे। लिहाज़ा शायरी का शौक़ बचपन से ही था। बी.ए. बी.टी. करने के बाद शिक्षण के पेशे से वाबस्ता हुए। स्थानीय पी.एल.जे.एल. रस्तोगी इन्टर कालिज में ख़िदमात अंजाम देते हुए 1996 ई. में सेवानिवृत्त हुए। ज़ह्न अदब की तरफ़ था। शेरो-शायरी का ज़ौक़ रखते थे। 1980 ई. से बाक़ायदा शायरी शुरू की और हज़रत गौहर उस्मानी के शागिर्द हो गये। ज़ौक़े-सुख़न को निखारने की ग़रज़ से उर्दू लिखना-पढ़ना भी सीखा। उत्तर प्रदेश लिटरेरी फ़ोरम के ज्वाइंट सेक्रेट्री और उत्तर प्रदेश उर्दू अकादमी के सदस्य भी रहे। कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ। 'हुमा' उर्दू देहली, 'मिलाप' और 'तेज' वग़ैरा पत्रिकाओं और अख़बारों में कलाम प्रकाशित हुआ। शोहरत से दूर उत्तम भवन, सराय कोठीवालान, मुरादाबाद में रहते हैं। उनका चुनिंदा कलाम पेश किया जा रहा है-

नज़र को हुस्ने-जमाल दे दो, ग़ज़ल को फ़िक्रे-शबाब दे दो
तुम्हारी महफ़िल में आ गया हूँ, शऊर दे दो, शराब दे दो
अगर मुक़द्दर में मेरे ग़म हैं तो ग़म उठाने की ताब दे दो
जो सोज़ बख़्शा है दिल को मेरे, नज़र को भी इज़्तिराब दे दो
नज़र सवाली उठी है मुझ पर, तुम्हारी बस्ती में अजनबी हूँ
ज़माना जितने सवाल पूछे मेरी तरफ़ से जवाब दे दो
सुकूं के बदले तड़प को चाहा, चमन के बदले क़फ़स सराहा
यक़ीं न हो तो मेरे जुनूं का हयाते-ग़म को हिसाब दे दो

अदा शनासे-मिज़ाज कहिए कि ना-शनासे-मिज़ाजे-उल्फ़त
मुझे तो तुमसे है इक अक़ीदत, जो चाहो मुझको ख़िताब दे दो
बक़द्रे ज़र्फ़े जुनूं तो वहशत सभी को मिलती है ग़मकदों में
अगर मेरा ज़र्फ़ देखना है तो वहशतें बे-हिसाब दे दो
मेरे सवालों पे इस तरह से ख़मोश आख़िर रहोगे कब तक
लबों को जुम्बिश न दे सको तो, नज़र से ही कुछ जवाब दे दो
सनम परस्ती का जुर्म लेकर खड़ा है 'त्यागी' झुकाए सर को
तुम्हारे मंदिर, तुम्हारी मस्जिद, अज़ाब दो या सवाब दे दो

\+ + +

फूल में ख़ुशबू नहीं, एहसास में हलचल नहीं
सब हवा के दोश पर हैं कोई भी पैदल नहीं
दिल की धड़कन पर भी कोई तब्सिरा फ़रमाइये
ये तबस्सुम तो मेरी वहशत का कोई हल नहीं
है यहां हर शख़्स को आज़ादी-ए-ज़हनो-ख़याल
ये फ़राज़े-आरज़ू है दोस्तो! मक़्तल नहीं
शबनमी पलकें बहाकर ले गईं शायद उसे
आज उनकी झील-सी आखों में भी काजल नहीं
आज की अफ़सुर्दगी पर आज ही कुछ सोचिये
आज जो कुछ सोच सकते हो वो मुमकिन कल नहीं
हो गई दुश्वार 'त्यागी' मंज़िले-राहे-वफ़ा
जबसे हाथों में तुम्हारा रेशमी आंचल नहीं

\+ + +

सरे-महफ़िल वफ़ा का हौसला टूटा तो क्या होगा
तसादुम भी निगाहों का न काम आया तो क्या होगा
मुक़ाबिल दफ़अतन आ जाये आईना तो क्या होगा
नज़र ऐसे में मुझको छोड़ दे तनहा तो क्या होगा
मुहब्बत में ये माना ज़ब्त भी इक शर्ते-अव्वल है
मगर सावन कोई पलकों पे आ ठहरा तो क्या होगा

किसी अख़बार की जैसे कहानी हो कि अफ़साना
मेरे हालात पर भी इस तरह सोचा तो क्या होगा
मुझे तस्लीम है ग़म इक इबादत है मुहब्बत में
अगर ग़म भी मुहब्बत में न रास आया तो क्या होगा
वो गीतों की सुरीली धुन कहां 'त्यागी' बिखेर आये
मेरी बस्ती के लोगों ने अगर पूछा तो क्या होगा

\+ + +

अब तक तो लिखते आये थे हम चांदनी की बात
अब फ़िक्र ये है डूबते सूरज को क्या लिखें
आँसू मेरे निकल पड़े आज उनकी आँख से
हम वाक़या लिखें कि इसे हादसा लिखें
मैं भी हूँ मेरी फ़र्दे-वफ़ा भी है मेरे साथ
अब देखना ये है कि वो क्या फ़ैसला लिखे

\+ + +

अभी तो खुश था अभी अश्कबार लगता है
ये आदमी तो बड़ा होशियार लगता है
उसे न देख जो तेरी तरफ़ मुख़ातिब है
उसे समझ जो तुझे ना-गवार लगता है
तुम्हें दिखायेगा कैसे ये वक़्त का चेहरा
ये आइना तो हमें दाग़दार लगता है
जो देखिए तो वो इक फूल है गुलिस्तां का
जो सोचिये तो मुजस्सम बहार लगता है
वो दिल हो, आँख हो, अहसास हो, तसव्वुर हो
हर आइने पे मुझे एक ग़ुबार लगता है

\+ + +

अब तू उसे न समझे तो ख़ालिक़ का क्या क़ुसूर
ये ज़िन्दगी है दर्से-मुकम्मल तेरे लिए

फ़िक्रो-नज़र, शऊरो-जुनूं, सोज़ो-इज़्तराब
लाया हूं आज सब सरे-मक़्तल तेरे लिए
रोज़े-अज़ल जो लिख दिया मक़्सूम में तेरे
आख़िर तेरे लिए है वो अव्वल तेरे लिए
'त्यागी' सरे-नियाज़ झुकाकर दुआएं मांग
काशी से उड़के आया है बादल तेरे लिए

\+ + +

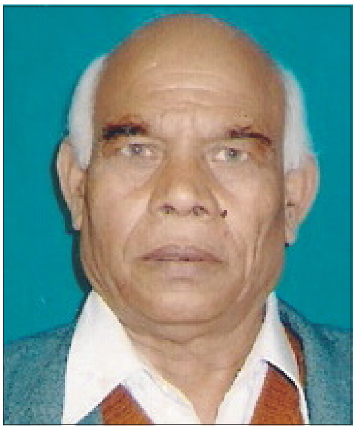
समझ में आया गुलों की शगुफ़्तगी क्या थी
पयामे-मौत था, फूलों की वो हंसी क्या थी
हर एक गाम पे जिसने तुम्हें संभाल लिया
मेरी ग़ज़ल का उजाला था, रोशनी क्या थी

\+ + +

दर्द आंखों से छलक जाए, तो पानी होगा
और ठहरे तो क़यामत की निशानी होगा
आओ तस्वीर का वो रुख़ भी तुम्हें दिखला दूं
कल जो हर हाल में उनवाने-कहानी होगा

\+ + +

सतीश 'फ़िगार'



सतीशकुमार गुप्ता पुत्र श्री भगवत सरन गुप्ता, उपनाम 'फ़िगार', 25 जनवरी 1941 ई. को मुरादाबाद में पैदा हुए। इसीलिए अपने नाम के साथ मुरादाबादी लिखते हैं। हज़रत 'शहबाज़' अमरोहवी के शागिर्द हैं। एम.ए. तक तालीम हासिल करने के बाद एल-एल.बी. करके वकालत को रोज़गार का साधन बनाया। मुरादाबाद की साहित्यिक संस्था 'कैफ़ मैमोरियल सोसाइटी' के सदस्य हैं। उर्दू शायरी से फ़ितरी लगाव है।

उर्दू और हिन्दी दोनों ज़बानों में शायरी करते हैं। उन्हें कमो-बेश तमाम विधाओं पर पकड़ हासिल है। यही वजह है कि उनके कलाम में नज़्म, क़तआत, मसनवी वग़ैरा के नमूने भी मिलते हैं लेकिन उनका अस्ल मैदान ग़ज़ल है।

'फ़िगार' के दर्ज ज़ैल शेरी मजमूए मंज़रे-आम पर आ चुके हैं-

(1) फ़िक्रे-जमील (उर्दू)	1986 ई.
(2) ख़्वाबे-परीशां (उर्दू)	1987 ई.
(3) अक्से-जमाल (उर्दू)	2005 ई.
(4) कौसरे-मिदहत (मजमूआ नातो-मनक़बत)	2007 ई.
(5) फ़िक्रे-जमील (उर्दू)	2011 ई.
(6) कसक (हिन्दी)	2011 ई.
(7) भीगे नयन (हिन्दी)	2014 ई.

मज़हबी ऐतबार से 'फ़िगार' आर्यसमाजी हैं। तारीख़े इस्लाम 'फ़िगार' के मुताअले का ख़ास मैदान है। रसूले-अकरम के चचा अबूतालिब से ख़ास लगाव रखते हैं। लिहाज़ा इस लिससिले में एक नस्री किताब देवनागरी रस्मुलख़त में- 'मोह्सिने-इस्लाम' 2015 ई. में छप चुकी है।

मुरादाबाद के पहले हिन्दू शायर हैं जिनका नातिया व मनक़बती मजमूआ मंज़रे-आम पर आया। इस मजमूए पर मुरादाबाद की प्रसिद्ध संस्था 'हम्दो-नात फ़ाउंडेशन' ने फ़ख़्रे-मिल्लत मौलाना मोहम्मद नज़ीर-उल-अकरम अवार्ड से भी नवाज़ा।

हिंदी इनकी मादरी ज़बान है और उर्दू इक्तसाबी, इसके बावजूद उर्दू में ज़बानो-बयान पर कुदरत हासिल है। सिलासतो-रवानी, फ़साहतो-बलाग़त के उम्दा नमूने उनके यहां मिलते हैं। पहले चंद अशआर उनके नातिया मजमूए 'कौसरे-मिदहत' से मुलाहिज़ा कीजिए-

तुम्हारे करम से ज़माने की गर्दिश
मेरे पांव छूकर चली जा रही है
ग़ुलामों को आज़ादियां मिल रही हैं
कि रस्मे-कुहन अब उठी जा रही है
जो कांटों भरी थी अब उनके ही दम से
वो फ़ूलों की वादी बनी जा रही है
दरे मुस्तफ़ा पर 'फ़िगार' अल्लाह-अल्लाह
मुरादों से झोली भरी जा रही है

\+ + +

इंसान को वाक़िफ़ किया इंसान के हक़ से
तुम आलमे इंसां के मददगार-ओ-मोईं हो
अल्लाह की आवाज़ है आवाज़ तुम्हारी
तुम फ़र्श नशीं होते हुए अर्श मकीं हो
कोनैन की तख़लीक़ का सामां ही नहीं तुम
कोनैन की तख़लीक़ का बाइस भी तुम्हीं हो

इंतख़ाब अज़ ख़्वाबे-परीशां-

जैसा कि अर्ज़ किया जा चुका है कि 'फ़िगार' साहब के छः शेरी मजमूए मंज़रे-आम पर आ चुके हैं। चूंकि यहां सिर्फ़ तज़्किरा मक़सूद है, कोई मुफ़स्सल मज़मून या तनक़ीदी जायज़ा पेश नहीं किया जा रहा

है, इसलिए पहले मजमू-ए-'ख़्वाबे परीशां' से ग़ज़लों और नज़्मों का इंतख़ाब पेश किया जा रहा है-

दीवानगाने-इश्क़ की नज़रों में ज़िन्दगी
हर ग़म को हंसते-हंसते उठाने का नाम है
इससे क़दम मिलाके चलो राहे-ज़ीस्त में
ये ज़िन्दगी 'फ़िगार' बुहत तेज़गाम है

+ + +

यूं गर्दिशे-ज़माना की रफ़्तार मोड़ दे
फ़रसूदा रस्मो-राह की ज़ंजीर तोड़ दे
नाकामी-ए-हयात से घबरा न जा 'फ़िगार'
तूफ़ानो-हादसात का पंजा मरोड़ दे

+ + +

ख़ंजरे-चंगेज़ भी बेताब होकर रह गया
हम ग़रीबों पर मज़ालिम इस क़दर ढाये गये

+ + +

तू रोज़ मज़ालिम ढाये और मज़लूमों का मैं साथ न दूं
ये बात किसी क़ीमत पर भी ऐ दोस्त मुझे मंज़ूर नहीं
मैं गर्दिशे-वक़्त से घबराकर हालात से समझौता करलूं
ये काम तो अहले-होश का है, दीवानों का दस्तूर नहीं

+ + +

हर शख़्स आज कहने लगा है मुझे 'फ़िगार'
ज़ख़्म अपने दोस्तों से मुझे इस क़दर मिले

+ + +

अंधेरी रात का आंचल सरकने वाला है
नई हयात का सूरज चमकने वाला है

+ + +

बरसेंगे फूल आपके होंठों से हर घड़ी
पहले हसद के कांटे दिलों से निकालिये

+ + +

मुल्क में तीरगी छाई है हर तरफ़
अपना घर फूंक दे रोशनी के लिए

+ + +

क़ुर्बानियों से होती है तामीर क़ौम की
लाखों का ख़ून बहता है इक इंक़लाब में

+ + +

होना है कामयाब अगर राहे-ज़ीस्त में
जो काम आज करना है कल पर न टालिये

+ + +

अरबाबे-अमल ही दुनिया को तदबीर बताया करते हैं
वो लोग हैं ये जिनके आगे तक़दीर का सर ख़म होता है

+ + +

मैं तेरे साज़ पे गाऊं तू मेरे साज़ पे गा
मेरी हो जा मेरी मेहबूब मुझे अपना बना
अपनी आग़ोश को वा कर मेरी बांहों में मचल
मैं तेरा शाहजहां तू मेरी मुमताज़ महल

– (मैं तेरा शाहजहां तू मेरी मुमताज़ महल)

बैठे हो कैसे गुमसुम से तुम, बिखरी-बिखरी ज़ुल्फ़ें हैं
सूखे-सूखे लब हैं तुम्हारे, भीगी-भीगी पलकें हैं
मेरी तरह अब तुम भी शायद तारे गिनते रहते हो
मुझसे तुम्हारी चुग़ली करती जागी-जागी आंखें हैं

– (जागी-जागी आंखें)

वीरान मेरे दिल की तरह रास्ते हैं सब
मेरा ये शह्र शह्रे-ख़मोशां है इन दिनों
सुनता है शंख और अज़ां रात-दिन मगर
आवाज़े दिल से बेख़बर इंसां है इन दिनों
हर ग़ुंचा ग़मज़दा है हर इक गुल उदास है
बदला हुआ निज़ामे-गुलिस्तां है इन दिनों

– (इन दिनों)

दिल बुझा, चेहरा बुझा, नज़रें बुझी देखा किये
हर क़दम पर बेबसी-ओ-बेकसी देखा किये
मयकदे में ख़ून पानी की तरह बहता रहा
साक़ी-ए-फ़य्याज़ की दरियादिली देखा किये

– (देखा किये)

ऐटमबमों का ख़तरा मंडला रहा है सर पर
हिन्दोस्तान लेकिन दारुलअमां रहेगा
हरगिज़ नहीं है मक़सद भारत का मुल्कगीरी
दुनिया में शान्ती का ये पासबां रहेगा

– (हिन्दोस्तान रहेगा)

डा. अजय 'अनुपम'



अजयकुमार अग्रवाल नाम और तख़ल्लुस 'अनुपम'। अदबी दुनिया में डा. अजय अनुपम के नाम से पहचाने जाते हैं। 11 जनवरी 1948 ई. को साहू जगदीश सरन अग्रवाल 'मिर्च वालों' के यहां जन्म लिया। बचपन ही से तालीम का ज़ौक़ रहा। राजनीतिशास्त्र और इतिहास में एम.ए. करने के बाद 1979 ई. में आगरा यूनिवर्सिटी से 'मौलाना आज़ाद और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन' शीर्षक से शोध लिखकर पी-एच.डी. की उपाधि हासिल की। यह मक़ाला ख़ुदाबख़्श लाइब्रेरी पटना से 1989 ई. में प्रकाशित हो चुका है। तारीख़ में ख़ास दिलचस्पी है, लिहाज़ा ठाकुरद्वारा तहसील की तारीख़ पर 2012 ई. में डी.लिट्. की डिग्री हासिल की। पेशे के ऐतबार से शिक्षक थे और 2011 ई. में सनातन धर्म इंटर कालेज, ठाकुरद्वारा के प्रिंसिपल की हैसियत से सेवानिवृत्त हुए। अनुपम साहब बुनियादी तौर पर हिन्दी के अदीब व शायर हैं लेकिन उर्दू से भी अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं। इनकी उर्दू से दिलचस्पी इसी से ज़ाहिर होती है कि उन्होंने जामिया मिल्लिया इस्लामिया से उर्दू लर्निंग कोर्स भी किया है। इनकी कई किताबें मंज़रे-आम पर आ चुकी हैं।

अजय अनुपम साहब का मानना है कि हिन्दुस्तानी भाषा को जब देवनागरी रस्मुलख़त मे लिखा जाता है तो उसे हिन्दी कहा जाता है और जब उसे फ़ारसी रस्मुलख़त में लिखा जाता है तो यही भाषा उर्दू कहलाती है। उनके उर्दू कलाम का नमूना मुलाहिज़ा कीजिए-

सलीक़ा अब तलक आया नहीं है बात कहने का
वो दावा कर रहे हैं अहले-ग़म के साथ रहने का
इशारे भर में जिनके छोड़ आये सलतनत सारी
सबब मालूम करना चाहते हैं अश्क बहने का

\+ + +

नम निगाही दे कभी जो दिल को दावत दोस्तो!
इससे बढ़कर इश्क़ की क्या है सआदत दोस्तो!
याद करने का अदा किया शुक्रिया, फिर किसलिए
याद, मतलब कर रहा है दिल इबादत दोस्तो!
धड़कनें करती हैं जब तक तज़्किरा उश्शाक़ का
तब तलक रहती है हर दिल में हरारत दोस्तो!
दोस्ती क्या की, कि जैसे खो गया मेरा वुजूद
इस मुहब्बत से तो अच्छी थी अदावत दोस्तो!
शुक्रिया! नफ़रत का नामा भेजकर पैदा तो की
मेरे एहसासात में कोई हरारत दोस्तो!
जबसे देखा है तुम्हें तो, ये न कर, ऐसा न कर
कर रहा है दिल उसी दम से हिदायत दोस्तो!
प्यार की पाकीज़गी को लिख के गालों पर गई
दिल समझ लेता है अश्कों की इबारत दोस्तो!

क़त्आ-

पस्तियों के बीच उम्मीदें जगाती हैं
हौसलों की आंख में सपने सजाती हैं
यूं ख़ुशी की अहमियत भी कम नहीं होती
सिर्फ़ तकलीफ़ें हमें जीना सिखाती हैं

ग़ज़ल-

हक़ के हक़ में कोई आवाज़ कहां तक पहुंचे
फ़ैसला वो ही करेगा, जो वहां तक पहुंचे

दिल खुलें, बंद दिमाग़ों के खुलें दरवाज़े
इश्क़े-पाकीज़ा नज़र कोनो-मकां तक पहुंचे

लफ़्ज़े-इंसाफ़ सियासत के सितमख़ानों के
दरो-दीवार की भी आहो-फ़ुगां तक पहुंचे
हमसे हटकर जो जिये ग़ैर उसूलों के लिए
मुड़ के वो देख रहे हैं कि कहां तक पहुंचे
दर्ज़ तारीख़ के पन्नों पे गवाही देखो
मौत पहुंची है कि कुछ हाथ जहां तक पहुंचे
मादरे-हिंद की आवाज़ जिगर से निकली
'मेरा पैग़ाम मुहब्बत है जहां तक पहुंचे'
आरज़ू है कि लगे ज़ख़्म पे मरहम, न लगे
बस तेरी नज़रे-करम दर्दे-निहां तक पहुंचे

ओंकार सिंह 'ओंकार'



नाम ओंकार सिंह और तख़ल्लुस 'ओंकार'। वालिद का नाम ठाकुर भरत सिंह, 4 जुलाई 1950 ई. को डिलारी, ज़िला मुरादाबाद के गांव चंगेरी में पैदा हुए। इंटरमीडिएट तक तालीम हासिल करने के बाद विद्युत विभाग आज़मगढ़ में क्लर्क हो गये। शेरो-शायरी और इल्मो अदब के बचपन से शौक़ीन थे। अपने हम-उम्र चचा की तहरीक पर जनवादी अदब पढ़ने का शौक़ पैदा हुआ और फिर रफ़्ता-रफ़्ता यह चीज़ उनके दिलो-दिमाग़ में बस गई। 1980 ई. में मज़दूर यूनियनों के जलसों में अपनी लिखी हुई नज़्में पढ़ना शुरू कर दीं थीं। इस शौक़ ने तबीअत को शेर कहने की तरफ़ मोड़ा। जैसा कि वह ख़ुद लिखते हैं-

''मेरी मुलाक़ात जनाब ताहिर हुसैन 'माहिर' से हुई, जो हमारे बिजली विभाग में जूनियर इंजीनियर थे। बहुत अच्छे इंसान होने के साथ-साथ बहुत अच्छे शायर भी हैं। यूं तो मैं उनसे 1978 ई. से वाक़िफ़ था, लेकिन उनकी शायरी के हुनर से वाक़िफ़ न था। मैंने उन्हें अपनी नज़्में सुनाईं तो उन्होंने मुझे प्यार से समझाया कि क़ाफ़ियों में कुछ कमी है। उन्होंने ग़ज़ल लिखने के बारे में मुझे कुछ बुनियादी बातें बताईं और मैंने अपनी ग़लतियों को दूर किया। इस तरह ग़ज़ल लिखने की शुरूआत हुई। लेकिन फिर भी ग़ज़ल में कुछ ख़ामियां रह जाती थीं। इस पर 'माहिर' साहब ने मुझसे कहा कि ग़ज़ल कहने के लिए उर्दू जानना ज़रूरी है। उन्होंने मुझे उर्दू की पहली किताब लाकर दी। मैंने उससे अक्षर ज्ञान हासिल किया और एक के बाद एक किताबें पढ़ता रहा, मैं जनाब 'माहिर' साहब का शुक्रगुज़ार हूं।''

इसके बाद 1990 ई. में मेरी मुलाक़ात उर्दू ग़ज़ल के नामवर उस्ताद शायर हज़रत नाज़िम क़ुरैशी साहब (मरहूम) से हुई। उस मुशायरे में

मेरी ग़ज़ल सुनकर उन्होंने अपनी मुहब्बत से नवाज़ा और मुझे अपने घर पर ही हर हफ़्ते होने वाली शेरी नशिस्तों में शामिल होने के लिए कहा। इस तरह मैं बज़्मे-नाज़िम क़ुरैशी का मेम्बर बन गया। बज़्मे-नाज़िम क़ुरैशी की हफ़्ते में दो नशिस्तें होती थीं, एक इतवार को और दूसरी जुमेरात को। इतवार को फ़िलबदीह शेरी नशिस्त होती थी। मैं दोनों नशिस्तों में लगातार शामिल होता रहा और शेर कहने की बारीकियां सीखता रहा।''

- (संसार हमारा है, पृ. 17-18)

जनवादी अदब की तरफ़ माइल होने के नाते 1992 ई. में 'जनवादी लेखक संघ' के मेम्बर बन गये। हमेशा समाज के दबे कुचले और पसमांदा तबक़ात की बात करते हैं। नफ़रत के अंधेरों के ख़िलाफ़ और प्यार मुहब्बत का पयाम आम करने की कोशिश करते हैं। आजिज़ी और इनकिसारी उनकी तबीयत के नुमायां औसाफ़ हैं। ताहिर हुसैन 'माहिर' ने उनके बारे में लिखा है-

''संसार में अमन क़ायम करने के लिए प्यार, भाईचारा और नेक कामों की ज़रूरत है और यह सिर्फ़ प्यार की रोशनी फ़ैलाने से ही हो सकता है। श्री ओंकार ने अपनी शायरी के ज़रिये यही रोशनी फ़ैलाने की कोशिश की है, जिसके लिए वह मुबारकबाद के हक़दार हैं।''

- (प्यार के दीप, पृ. 25)

उर्दू ज़बान की बारीकियों से अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं, छंद-शास्त्र के भी जानकार हैं, लेकिन अभी तक कोई मजमूआ उर्दू ज़बान में शाया नहीं किया, बल्कि देवनागरी लिपि में ग़ज़लों के दो मजमूए 'संसार हमारा है' (2008 ई.) और 'प्यार के दीप' (2012 ई.) शाया हो चुके हैं। ग़ज़ल के अलावा हिन्दी की विधाओं- मुक्तक, गीत और दोहा वग़ैरा पर भी पकड़ है। चुनिंदा ग़ज़लें प्रस्तुत की जा रही हैं, मुलाहिज़ा कीजिए-

'संसार हमारा है' से चयनित-

यूं कोई दीप मुहब्बत का जलाया जाये
दोस्तो! जिसका ज़माने में उजाला जाये
दिल की कश्ती है घिरी वक़्त के तूफ़ानों में
ग़र्क़ होने से भला कैसे बचाया जाये
ख़ून इंसान का जो चूस के फूली है बहुत
ऐसी जोंकों का निशां जड़ से मिटाया जाये
ज़ह्र नफ़रत का जो इंसां के लहू में घोलें
ऐसे नागों से इस इंसां को बचाया जाये
मसअला हल कोई बंदूक़ नहीं कर सकती
क्यों न हल बैठ के आपस में निकाला जाये
नित नये रंग हों ख़ुशबू भी हो प्यारी प्यारी
ऐसे फूलों से ही गुलदस्ता सजाया जाये
जिससे लोगों के दिमाग़ों में हो नफ़रत पैदा
ऐसी बातों को न अब शेरों में ढाला जाये
प्यार की जोत हर इक दिल में जलाकर 'ओंकार'
जग से नफ़रत के अंधेरों को मिटाया जाये

\+ + +

एक होकर हम लड़ें जो मुश्किलाते-दह्र से
ख़ुशनुमा हो जाएगा फिर ज़िंदगानी का सफ़र
हमको हैरत से ज़माना देखता रह जाएगा
रंग लाएगा हमारी जांफ़िशानी का सफ़र

\+ + +

मुझे क़बीलों में बांटा गया है कुछ ऐसे
कि रेज़ा-रेज़ा ज़मीं पर बिखर रहा हूं मैं
तमाम शह्र ही अब हादसों की ज़द में है
सुकूं से दूर हूं क़िस्तों में मर रहा हूं मैं

\+ + +

महफ़ूज़ आज अपने ही घर में कोई नहीं
जो कुछ हिफ़ाज़तें हैं वो सरकार के लिए
मजबूरियां ग़रीब की उनसे कहेगा कौन
अख़बार भी हैं आज तो ज़रदार के लिए

+ + +

ज़ुल्म वालों से दहशतगरी छीन लो
पंजा-ए-मौत से ज़िंदगी छीन लो
जिनकी फ़ितरत में तख़रीबकारी फ़क़त
उनसे महफ़िल मुहब्बत भरी छीन लो
छीनती है जो हमसे उजाले सदा
शब के दामन से वो तीरगी छीन लो

+ + +

ज़ुल्फ़ो-रुख़सार पर ही नहीं मुनहसिर
है बहुत कुछ अभी शायरी के लिए

'प्यार के दीप' से चयनित-

प्यार के दीप जलाते हुए चलना होगा
अब अंधेरों को उजालों में बदलना होगा
हैं जो दरकार गुलिस्तां की बहारें तुमको
पहले बारूद के जंगल से निकलना होगा
नाज़ पत्थर के जिगर पर है अगर ज़ालिम को
मूंग तुमको भी उसी सीने पे दलना होगा
दोस्ती की है अगर आज तमन्ना हमसे
रास्ता ज़ुल्म का तुमको भी बदलना होगा
ख़ुद को दुनिया की फ़ज़ाओं में बसाने के लिए
आज ख़ुशबू को गुलिस्तां से निकलना होगा
लोग जो फ़ैज़ उठाते हैं लड़ाकर हमको
उनके नापाक इरादों को कुचलना होगा

हर तरफ़ गूंज है आहों की फ़ज़ा में यारो
अब तो पत्थर के दिलों को भी पिघलना होगा
गर ज़माने को बदलने की है दिल में हसरत
पहले 'ओंकार' तुम्हें ख़ुद को बदलना होगा

\+ + +

ग़रीबी, भुखमरी, बेरोज़गारी, आबरू-रेज़ी
न जाने और क्या-क्या आजका बाज़ार देता है

\+ + +

मुश्किलों का हल निकालें आओ मिलकर हम सभी
क्यों दुखों में मुब्तिला हों रास्ता होते हुए
प्यार की फ़सलें उगें नफ़रत मिटे संसार से
हमको भी ख़ुशियां मिलें सबका भला होते हुए

\+ + +

इस क़दर लोग अंधेरों के तरफ़दार हुए
ऐसा लगता है उजालों का सफ़र भूल गये
मैंने हर तौर मुहब्बत के उजाले देखे
और तुम मेरे उजालों का नगर भूल गये

\+ + +

रात के अंधेरे में जिन्दगी न खो जाये
इसलिए ज़रूरी है ज़िन्दगी चिराग़ों की
इक दिया जलाओ तुम एक मैं जलाऊँगा
आयेगी नज़र सबको रोशनी चिराग़ों की

\+ + +

जहालतों के अंधेरे कहीं न रह जायें
चिराग़ इल्म का हर-सू हमें जलाना है

\+ + +

आओ हम अपने आपकी मंज़िल तलाश लें
रहबर तो रास्तों से बहुत दूर हो गए

\+ + +

झोंपड़े हों कि महल्लात महक जाते हैं
प्यार वो शय है कि दिन-रात महक जाते हैं

\+ + +

इल्म से दूर हूं तालीम नहीं पास मेरे
मैं तो बस एक मुहब्बत का हुनर रखता हूं
मुश्किलें मुझको भला कैसे डरा पाएंगी
दिल है फ़ौलाद तो पत्थर का जिगर रखता हूं
कौन कर सकता है 'ओंकार' अदावत मुझसे
अपने जज़्बों में मुहब्बत का असर रखता हूं

\+ + +

जानते हैं ये सभी, बस एक है सबका ख़ुदा
फिर भी होती है लड़ाई राम की, रहमान की
अब दरिंदों की हिफ़ाज़त में लगे हैं लोग सब
है मगर परवाह किसको आदमी की जान की

\+ + +

लुटती है रोज़ो-शब सरे-बाज़ार आबरू
इस दौरे-इर्तक़ा की करामात देखिए
आंसू लहू के हम न बहाएं तो क्या करें
हाकिम बने हैं अहले-ख़राबात देखिए

\+ + +

किसी के घर को जलाने वाले-
हर इक पड़ोसी को है ये लाज़िम
बग़ल के घर की लपट से वो भी-
ख़ुद अपने घर को बचा न समझे

डा. कृष्णकुमार 'नाज़'



डा. कृष्णकुमार 'नाज़' का जन्म 10 जनवरी 1961 को मुरादाबाद के कूरी रवाना गांव में हुआ। पिता का नाम श्री रामगोपाल वर्मा था। आरंभिक शिक्षा गांव में ही प्राप्त की। छठी कक्षा में पारकर इंटर कालेज में दाख़िला लिया, लेकिन यह सिलसिला यूं ही जारी नहीं रहा। उन्होंने सातवीं कक्षा में फिर अपने गांव के स्कूल में दाख़िला लिया। यहां से आठवीं करने के बाद नौवीं और दसवीं कृषक उपकारक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय मतलबपुर से पास की। आगे की तालीम शहर मुरादाबाद में ही रहकर प्राइवेट रूप से हासिल की। आपने समाजशास्त्र, उर्दू और हिंदी यानी तीन विषयों में एम.ए. किया। उसके बाद अपने उस्ताद जनाब कृष्णबिहारी 'नूर' पर हिंदी में शोधग्रंथ 'हिंदी-ग़ज़ल और कृष्णबिहारी नूर' लिखकर पी-एच.डी. की डिग्री हासिल की। आजकल गन्ना विकास विभाग मुरादाबाद में कार्यरत हैं।

नाज़ साहब को बचपन से ही गाने का शौक़ था और यह शौक़ ही उन्हें शायरी की शाहराह तक ले आया। अपने इस ज़ौक़ की तकमील के लिए अपने गांव के मदरसे के मौलवी साहब से उर्दू की तालीम हासिल की। शुरू में कुछ अशआर लिखकर मौलवी साहब को दिखाए तो उन्होंने इस फ़न से नावाक़िफ़ियत का उज़्र पेश करते हुए अपने दोस्त रामकुमार वर्मा 'ग़म' बिजनौरवी से मुलाक़ात कराई। हालांकि यह तअल्लुक़ चंद मुलाक़ातों से आगे नहीं बढ़ सका। बाद में नाज़ साहब जनाब कृष्णबिहारी 'नूर' से मुतास्सिर हुए और सन् 1989 में बाक़ायदा उनके शागिर्द हो गए और रफ़्ता-रफ़्ता नाज़ उनके नूरे-नज़र बन गए। इस अदबी रिश्ते पर 'नाज़' को भी नाज़ है। नूर साहब के हुज़ूर नाज़ साहब की सआदतमंदी उनके इस बयान से ज़ाहिर होती है-

''नूर साहब ने जो ग़ज़ल की तहज़ीब, सलीक़ा और नुदरत अपनी महकी और जगमगाती हुई गुफ़्तगू से मुझ पर अयां की है, उसी को बुनियाद मानकर शेर कह लेता हूं। जब भी किसी को मेरा कोई शेर पसंद आता है और कोई तारीफ़ या हौसला अफ़ज़ाई करता है तो उसे नूरसाहब का नूर मानकर नाज़ कर लेता हूं। इसलिए मेरे पास नाज़ करने लायक़ अगर कुछ है तो वो नूरसाहब से मेरा अदबी रिश्ता ही है, जिसकी बदौलत मैं ख़ुद नाज़ कहलाया जाता हूं और मुझे इस रिश्ते पर हमेशा नाज़ रहेगा।''

– (इक्कीसवीं सदी के लिए, पृ. 11)

नाज़ साहब की दर्ज ज़ैल किताबें मंज़रे-आम पर आकर मक़बूल हो चुकी हैं-

(1) इक्कीसवीं सदी के लिए (ग़ज़ल-संग्रह उर्दू), 1998
(2) गुनगुनी धूप (ग़ज़ल-संग्रह हिन्दी), 2002 व 2010
(3) मन की सतह पर (गीत-संग्रह हिन्दी), 2003
(4) जीवन के परिदृश्य (नाटक-संग्रह हिन्दी), 2010
(5) उगा है फिर नया सूरज (ग़ज़ल-संग्रह हिन्दी), 2013
(6) हिन्दी ग़ज़ल और कृष्णबिहारी 'नूर', (2014)
(7) व्याकरण ग़ज़ल का (2016)

जैसा कि उक्त सूची से ज़ाहिर है कि 'नाज़' साहब पहलूदार शख़्सियत के हामिल हैं। नज़्म के साथ-साथ गद्य लेखन पर भी पकड़ रखते हैं, लेकिन उनका अस्ल मैदान शायरी है। उन्होंने शायरी की कई विधाओं में कामयाब कोशिश की है, लेकिन उनकी पसंदीदा विधा ग़ज़ल ही रही। ग़ज़ल से अपनी वाबस्तगी और मक़बूलियत का इज़हार करते हुए कहते हैं-

''ग़ज़ल आज उर्दू की सबसे ज़्यादा असरकुन और मक़बूल आम सिन्फ़ है। यह उसकी मक़बूलियत की ही दलील है कि आज उर्दू शायरी का मतलब ही ग़ज़ल समझा जाने लगा है। बड़ी से बड़ी बात

को शायर एक शेर यानी दो मिसरों में कह देता है। इतना अजमाल किसी दीगर सिन्फ़े-सुख़न में कहां है। ... देखा जाये तो ग़ज़ल चन्द अशआर का छोटा-सा मजमूआ है और सोचा जाये तो यही मजमूआ ख़यालात का बहरे-आज़म है।''

- (बात बोलेगी पृ. 201)

नाज़ साहब की शायरी का आग़ाज़ उर्दू से हुआ और उनका पहला मजमूए-कलाम 'इक्कीसवीं सदी के लिए' भी उर्दू ही में छपा, लेकिन इसके बाद की किताबें हिन्दी यानी देवनागरी लिपि में ही प्रकाशित हुईं। हालांकि नाज़ साहब हिन्दी और उर्दू में फ़र्क़ के क़ायल नहीं हैं। उनका मानना है-

''हिन्दी के माने हैं कि हिन्द में पैदा हुई भाषा और उर्दू भी हिन्दुस्तान में पैदा हुई है। मैं तो उर्दू को हिन्दी का ही हिस्सा मानता हूं। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि एक ही भाषा के दो रस्मुलख़त हैं देवनागरी और फ़ारसी।''

(बात बोलेगी, पृ. 200)

'नाज़' साहब छंदशास्त्र के भी अच्छे जानकार हैं और शेर कहने के लिए उसे ज़रूरी समझते हैं। 'व्याकरण ग़ज़ल का' इसी मक़सद के पेशे-नज़र लिखी गई है। शायरी के अन्य गुण-दोषों पर भी उनकी गहरी नज़र है।

'नाज़' साहब अपने उस्ताद 'नूर' साहब की तरह आला ख़यालात और बुलंद फ़िक्र के हामिल हैं। ग़ज़लों में हिन्दुस्तानी भाषा का इस्तेमाल करना उनकी फ़ितरत में शामिल है। वो ग़ज़ल में न तो अरबी-फ़ारसी आमेज़ अल्फ़ाज़ व तराकीब इस्तेमाल करते हैं और न ही संस्कृत बनाम हिन्दी के इस्तेमाल के क़ायल है।

मुलाहिज़ा फ़रमायें उनके पहले मजमूए-कलाम 'इक्कीसवीं सदी के लिए' का इंतख़ाबे-कलाम-

नात

कितनी बेनूर-सी लगने लगी दुनिया मुझको
जबसे ख़्वाबों में नज़र आया मदीना मुझको
जब भी नाम आपका लेकर मैं उठाता हूं क़दम
राह दे देता है बहता हुआ दरिया मुझको
ज़ह्न क्या चीज़ है, सांसें भी महक उठती हैं
याद जब आता है गुलज़ारे-मदीना मुझको
जीत लूं मैं भी हुक़ूक़ और फ़राइज़ की जंग
हौसला दीजिए ऐसा मेरे मौला मुझको
रोशनी कुछ तो निगाहों को अता फ़रमा दें
जागते-सोते दिखा दीजिए जलवा मुझको
'नाज़' होंठों पे मुहम्मद का नहीं यूं ही नाम
चाहिए था कोई मज़बूत सहारा मुझको

ग़ज़लें

उपासना है मेरी ऐसे आदमी के लिए
ख़ुदा के बाद जो क़ाबिल है बन्दगी के लिए
वो चन्द क़दरें जो तहज़ीब की बची हैं उन्हें
छुपाये फिरता हूं इक्कीसवीं सदी के लिए
दुआएं इसकी न कीजे कि उम्र बढ़ जाये
दुआएं मांगिए जीवन में शान्ती के लिए
तुम्हारे बाद तुम्हारी तलाश होगी 'नाज़'
जला के रख दो चिराग़ों को रोशनी के लिए

\+ + +

बेतहाशा तंज़ करता है दिये पर आज तक
एक टुकड़ा तीरगी का पांव से लिपटा हुआ
मैं नदी हूं, तू समंदर फ़र्क़ बस इतना ही है
हर घड़ी मैं हूं सफ़र में, और तू ठहरा हुआ

ज़िन्दगी तेरी हक़ीक़त से मैं नावाक़िफ़ नहीं
जाने कितनी बार का ये ख़्वाब है देखा हुआ
हो गया जो देवता बनकर बहुत मग़रूर अब
एक पत्थर था ज़मानेभर का ठुकराया हुआ
ज़िंदगी ऐसा जज़ीरा है कि जिसके हर तरफ़
तिश्नगी का है समंदर दूर तक फैला हुआ
छीन ली उस ख़्वाब ने ही रोशनी आंखों की 'नाज़'
जो उजालों के लिए था आंख में आया हुआ

+ + +

पेड़ ऊंचे और साया नाम का
पेड़ छोटे और घना साया बहुत
सर पे सूरज था तो कुछ ऐसा लगा
मुझसे छोटा है मेरा साया बहुत

+ + +

सफल हो तो ऐसी सफल हो तपस्या
मेरी प्यास का मुंतज़िर हो समंदर
अमल शर्त है 'नाज़' ये जान लो तुम
कि है अपने हाथों में अपना मुक़द्दर

+ + +

मेरी बस्ती के चिराग़ों को बुझाने वाले
थे सभी लोग वो सूरज के घराने वाले

+ + +

जहां भी फ़न के रखवाले मिलेंगे
ग़मों में ज़िंदगी ढाले मिलेंगे
जलेगा दीप तो घर में यक़ीनन
दरो-दीवार तो काले मिलेंगे

+ + +

हो गया जो देवता बनकर बहुत मग़रूर, वो
एक पत्थर था ज़मानेभर का ठुकराया हुआ
छीन ली उस ख़्वाब ने ही रोशनी आंखों की 'नाज़'
जो उजालों के लिए था आंख में आया हुआ

\+ + +

जनम-जनम से जहां की है साधना मैंने
उसी मुक़ाम से दी है तुझे सदा मैंने
हर एक हर्फ़ में सूरत तेरी उभर आई
ग़ज़ल के रूप में जब भी तुझे लिखा मैंने
तुम्हारे साथ चला हूं तो ये हुआ महसूस
चले बग़ैर किया तय हो रास्ता मैंने
जहां की ठोकरें खाकर भी जो नहीं टूटा
बना लिया उसी पत्थर को देवता मैंने
ये क्यों, कि जितने भी दुख हैं, हैं ज़िंदगी के नाम
कभी न देखी कोई लाश ग़मज़दा मैंने
मेरी तलाश में देखो भटक न जाना कहीं
हर एक राह में छोड़े हैं नक़्शे-पा मैंने

\+ + +

नशा दीवानगी का जिस घड़ी उतरा तो ये जाना
इबादतगाह थी जिसको तेरी महफ़िल समझ बैठे

\+ + +

हौसले दिल में जब मचलते हैं
कुछ नये रास्ते निकलते हैं
हमसफ़र आप हो गये जबसे
ग़म खड़े दूर हाथ मलते हैं
तुम मुहब्बत को क्या समझते हो
बे-जलाये चिराग़ जलते हैं

कोई जलता दिया बुझाना मत
अनगिनत साये साथ चलते हैं
दुख भी मेह्मां हैं कुछ पलों के 'नाज़'
रातें ढलती हैं दिन निकलते हैं

\+ + +

हर दिशा सुगंधित है, हर तरफ़ उजाला है
आज उसकी यादों ने मुझपे रंग डाला है
मुफ़लिसी बला क्या है, उससे पूछिये साहब
जिसने पेट भरने को ख़ून बेच डाला है
बदला अपने एह्सां का उम्रभर नहीं चाहा
सीपियों ने बचपन से मोतियों को पाला है
आफ़ताब को घायल कर दिया अँधेरों ने
तीरगी का हर जानिब कैसा बोलबाला है

\+ + +

नाख़ुदा, नाव, पतवार, साहिल हमें
एक तुम क्या मिले, सब सहारे मिले
चाँद, सूरज, सितारे, घटा, चाँदनी
जितने दरपन मिले, सब तुम्हारे मिले

\+ + +

जिस्म मुजरिम है और रूह गवाह
ज़िंदगी इक बयान है प्यारे
ग़म, ख़ुशी, आह, दर्द और आंसू
सबकी अपनी ज़बान है प्यारे
तुझको समझूं, लिखूं, पढ़ूं, सोचूं?
तू मेरा इम्तिहान है प्यारे
सिसकियां, आह, रंज और घुटन
दर्द का ख़ानदान है प्यारे

चांद, सूरज, सितारे कुछ तो दे
तू अगर आसमान है प्यारे
कम नहीं हो सकी लबों की हंसी
ग़म की क्या आन-बान है प्यारे

\+ + +

ये संसार क्या है, ये जीवन-मरन क्या
तुम्हारी गली के हैं फेरों पे फेरे

\+ + +

हर एक बार वो मेह्मान बनके लौट आई
ख़िज़ां को प्यार बहुत है हमारे गुलशन से

\+ + +

संभलकर राह में चलना वही पत्थर सिखाता है
हमारे पांव के आगे जो ठोकर बनके आता है

\+ + +

सूरते-यार न हो जिनकी निगाहों में 'नाज़'
आइने भी उन्हें नज़रों से गिरा देते हैं

\+ + +

कूड़े के अंबार से पन्नी चुनते अधनंगे बच्चे
पेट से हटकर भी कुछ सोचें, वक़्त कहां मिल पाता है
ठंडा चूल्हा, ख़ाली बर्तन, भूखे बच्चे, नंगे जिस्म
सच की राह पे चलना आख़िर नामुमकिन हो जाता है

\+ + +

असली-नक़ली के अन्तर को आंखें क्या पहचानेंगी
मरहम की पहचान किसी दिन ज़ख़्मों से करवायेंगे

\+ + +

ज़िंदगी ये बता नाम क्या दूं तुझे
आशना, अजनबी, राहज़न, राहबर

\+ + +

फ़िक्र जीवन की हैं इंसाँ को न चिंता मौत की
सिर्फ़ ज़ेरे-ग़ौर है तो रोटियों का मरहला
सच का बूढ़ा पेड़ तो पतझड़ ने वीराँ कर दिया
झूठ का पौधा बहुत इस दौर में फूला-फला

\+ + +

पै ब पै कुछ आइनों से चोट खा जाने के बाद
पत्थरों के दरमियाँ रहना मुझे अच्छा लगा

\+ + +

जिसकी ग़म से न हो शनासाई
आंसुओं की ज़बान क्या जाने
एक बहती हुई नदी की 'नाज़'
ठहरा सागर थकान क्या जाने

\+ + +

पत्थर से देवता वो यूं ही तो नहीं हुआ
गुज़रा है वो ज़माने के हर इम्तिहान से

\+ + +

तराशे जाने की ख़्वाहिश तो है ऐ 'नाज़' मुझमें भी
मैं पत्थर हूं, मगर मुद्दत से दस्ते-बेहुनर में हूं

\+ + +

हर वक़्त हूँ किसी न किसी इम्तिहान में
शायद इसीलिए है ये तल्ख़ी ज़ुबान में
अपनी अना की क़ैद से बाहर निकल के देख
पैवंद लग चुके हैं तेरी आन-बान में
सोह्बत बुरी मिली तो ग़लत काम भी हुए
वैसे कोई कमी तो न थी ख़ानदान में
ग़म भी, ख़ुशी भी, आह भी, आँसू भी, रंज भी
सबको जगह मिली है मेरी दास्तान में

नींदों की जुस्तजू में लगे हैं तमाम ख़्वाब
सज-धज के आ गया है कोई उनके ध्यान में
दरवाज़ा खटखटाए चले जा रहे हो 'नाज़'
लगता है कोई शख़्स नहीं है मकान में

\+ + +

जिस घर में वफ़ा और मुहब्बत न मिलेगी
उस घर में कोई चीज़ सलामत न मिलेगी
बाज़ार में बैठे हो तो इतना भी समझ लो
क़ीमत तो मिलेगी, कभी इज़्ज़त न मिलेगी
ऐ नींद, मुझे दे दे कोई ख़्वाब सुहाना
सोने के लिए फिर मुझे मुहलत न मिलेगी
जी में तो ये आता है, हँसूँ आप पे, लेकिन
तहज़ीब से मुझको ये इजाज़त न मिलेगी
संसार तो कुछ रोज़ ठहरने की जगह है
बसने की किसी को भी इजाज़त न मिलेगी

\+ + +

मुसाफ़िर हूँ इक अनजानी डगर का
कुछ अंदाज़ा नहीं होता सफ़र का
मेरे ख़्वाबो! मेरी नींदें सजा दो
कि मैं जागा हुआ हूँ उम्रभर का
हैं मुझमें ख़ामियाँ यूँ तो बहुत-सी
मगर पैकर हूँ मैं इल्मो-हुनर का
मुझे रख लो पनाहों में तुम अपनी
भरोसा क्या भला दीवारो-दर का
सुनो मुझसे अँधेरों की कहानी
दिया हूँ रात के पिछले पहर का
मुबारकबाद का वो मुस्तहक़ है
जो घायल हो किसी तिरछी नज़र का

अंकित गुप्ता 'अंक'



नाम अंकित गुप्ता और तख़ल्लुस 'अंक'। वालिद का नाम राजकुमार गुप्ता। 20 फ़रवरी 1989 को सहारनपुर में पैदा हुए। मुरादाबाद को वतने-सानी बनाया और अब यहीं रहते हैं। बी.एस-सी., बी.एड. करने के बाद उर्दू सीखने की तरफ़ राग़िब हुए और उर्दू से एम. ए. किया। रोज़गार की तलाश में हैं। शायरी का ज़ौक़ है। अपने ज़ौक़े-सलीम को ही अपना रहनुमा तस्लीम करते हुए 2004 में शायरी का आग़ाज़ किया। उर्दू में ग़ज़ल के साथ-साथ नज़्म भी कहते हैं। उर्दू के साथ हिंदी में भी शायरी करते हैं। गीत, दोहा और हाइकू उनकी पसंदीदा अस्नाफ़ हैं। कहानी और अफ़सानानिगारी में भी दिलचस्पी है। उर्दू सेमिनारों में भी शिरकत करते हैं। इस तज़्किरे में शामिल तमाम शायरों में सबसे कम उम्र हैं। उनकी शायरी की उम्र सिर्फ़ 10-11 बरस है। आइंदा के लिए उनसे बहुत कुछ उम्मीदें वाबस्ता हैं। मुन्तख़ब कलाम मुलाहिज़ा कीजिए-

रंग गिरगिट-सा मुझे पल में बदलना आ न पाया
दोग़ली दुनिया के नक़्शे-पा पे चलना आ न पाया
हश्र तो दीवानगी का हर पतंगा जानता है
मुद्दतों से फ़िर भी उसको क्यों संभलना आ न पाया
ज़िंदगी में तय किये थे यूं तो हमने भी उसूल
ये अलग है बात हमको उन पे चलना आ न पाया
जब चली वो 'अंक' बस बरबादियां करती गई है
आतिशे-सहरा को सूरज-सा भी जलना आ न पाया

\+ + +

इक मुद्दत में जाकर एक नशेमन बनता है
आंधी ये मग़रूर उसे पल में ढा जाती है

उसकी मर्ज़ी से बनते हैं उसके सब क़ानून
उसकी लाठी चलने पर आवाज़ न आती है
जब भी कोई ख़्वाब हसीं पूरा होने को हो
क्यों ये हक़ीक़त अपना काला रूप दिखाती है
काश कभी सनकी तूफ़ाँ समझे इंसां का दर्द
उसकी पल की मस्ती कितनी नाव डुबाती है

+ + +

ऐब उसके जब उसे हमने गिनाए एक दिन
ख़ार अपनी राह में ख़ुद ही बिछाये एक दिन
बेवफ़ाई एक अर्से तक सही और चुप रहा
मेरे जैसा सब्र वो करके दिखाये एक दिन
साथ मेरा चाहिए, पर है अना से प्यार भी
वो है प्यासा, वो कुएँ के पास आये एक दिन
तुम क़फ़स मज़बूत करने में लगे तो हो मगर
ले के पिंजरा ही परिन्दा उड़ न जाये एक दिन
वक़्त रहते सब्र मेरा आज़माना छोड़ दो
इससे पहले वक़्त तुमको आज़माए एक दिन

+ + +

दुख से यारी करलो तुम
जीवन भारी करलो तुम
मर्द से आगे वो निकली
फ़तवे जारी करलो तुम
मन है चंचल भटकेगा
पहरेदारी कर लो तुम
सच से ,वफ़ा से तुमको क्या
दुनियादारी करलो तुम
'अंक' लगाकर प्यार का रोग
रातें भारी करलो तुम

संदर्भ-ग्रंथ

इतिहास एवं आलोचना–

1. 1857 के मुजाहिद शोअरा : इमदाद साबरी, मक्तबा शाहरा, देहली।
2. 1857 के ग़द्दार शोअरा : इमदाद साबरी, मक्तबा शाहरा, देहली।
3. उर्दू के नशोनुमा में सूफ़ीया-कराम का काम : मौलवी अब्दुल हक़, अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू, दिल्ली।
4. तारीख़े-अदब उर्दू : सैयदा जाफ़र, ज्ञानचंद जैन, एन.सी.पी.यू.एल. नई दिल्ली।
5. तारीख़े-जद्दो-जहद आज़ादी : महबूब सब्ज़बारी, इस्लामिक बुक हाउस, मुरादाबाद।
6. दास्ताने-तारीख़े-उर्दू : हामिद हसन क़ादरी, एजूकेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
7. शोअरा-ए-मुरादाबाद की अदबी ख़िदमात : डा. फ़हमीदा ख़ान, इदारा-ए-ज़बानो-अदब, मुरादाबाद।
8. हिंदी ग़ज़ल और कृष्णबिहारी 'नूर' : डा. कृष्णकुमार 'नाज़', गुंजन प्रकाशन, मुरादाबाद।
9. मुख़बिरे-आलम और तहरीके-आज़ादी : इमदाद साबरी, कराची (पाकिस्तान)।
10. हिंदुस्तानी रंग : प्रो. मुहम्मद हसन, ग़ालिब एकेडमी, नई दिल्ली।
11. मेरे तज्ज़ियाती औराक : डा. आबिद हुसैन हैदरी, नई दिल्ली।

तज़्किरे–

1. उर्दू के हिंदू मसनवीनिगार : अता उल्ला पालवी, साहित्य एकेडमी, दिल्ली।
2. इंतख़ाबे-यादगार : अमीर मीनाई, उ.प्र. उर्दू एकेडमी, लखनऊ।
3. तज़्किरा-ए-हिंदी : मुस्हफ़ी, उ.प्र. उर्दू एकेडमी, लखनऊ।
4. तज़्किरा-ए-बोलाई : जन्नतनिशा, मुरादाबाद।
5. चिराग़ शह्रे-जिगर के : क़मर क़दीर इरम, इरम पब्लिकेशन, मुरादाबाद।
6. खुमख़ाना-ए-जावेद : लाला श्रीराम, दिल्ली प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली।
7. सुख़न-ए-शोअरा : नस्साख़, उ.प्र. उर्दू एकेडमी, लखनऊ।
8. सरापा सुख़न : मोहसिन अली, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।
9. शोअरा-ए-हुनूद : बुद्धप्रकाश जौहर देवबंदी, महबूब प्रेस देवबंद।
10. शोअरा-ए-रूहेलखंड : शायां बरेलवी, फ़रहान पब्लिकेशंस, कराची।
11. सुब्हे-गुलशन : मोहम्मद हसन ख़ां, मतबा-ए-शाहजहानी, भोपाल।
12. क़सीदानिगाराने-उत्तरप्रदेश : अली जव्वाद ज़ैदी, उ.प्र. उर्दू एकेडमी, लखनऊ।
13. गुलिस्ताने-सुख़न : साबिर बख़्श, उ.प्र. उर्दू एकेडमी, लखनऊ।
14. गुलशने-बेख़ार : नवाब मुस्तफ़ा ख़ां शेफ़्ता, उ.प्र. उर्दू एकेडमी, लखनऊ।

15. गुलशने-बेख़ार (उर्दू तर्जुमा) : हमीदा ख़ातून, एन.सी.पी.यू.एल. नई दिल्ली।
16. गुलशने-हिंद : मिर्ज़ा अली लुत्फ़, उ.प्र. उर्दू एकेडमी, लखनऊ।
17. मग़ज़ने-निकात : क़ायम चांदपुरी, उ.प्र. उर्दू एकेडमी, लखनऊ।
18. मुदर्रिसीने-मुरादाबाद और उर्दू शायरी : किश्वर उस्मानी व डा. तौसीफ़, हैविट मुस्लिम इंटर कालेज, मुरादाबाद।
19. हमारे रसूल : डा. धर्मेन्द्र नाथ, ईरानी सिफ़ारतख़ाना, नई दिल्ली।

काव्य-संग्रह–

1. उगा है फिर नया सूरज : डा. कृष्णकुमार 'नाज़', गुंजन प्रकाशन, मुरादाबाद।
2. इक्कीसवीं सदी के लिए : डा. कृष्णकुमार 'नाज़', गुंजन प्रकाशन, मुरादाबाद।
3. बात बोलेगी : योगेंद्र वर्मा 'व्योम', गुंजन प्रकाशन, मुरादाबाद।
4. प्यार के दीप : ओंकार सिंह 'ओंकार', गुंजन प्रकाशन, मुरादाबाद।
5. ख़्वाबे-परीशां : सतीश 'फ़िगार', मुरादाबाद।
6. संसार हमारा है : ओंकार सिंह 'ओंकार', गुंजन प्रकाशन, मुरादाबाद।
7. अक्से-जमाल : सतीश 'फ़िगार', मुरादाबाद।
8. कौसरे-मिदहत : सतीश 'फ़िगार', मुरादाबाद।
9. गाहे-गाहे : रोलैंड लॉरेंस, नई आवाज़, जामियानगर, दिल्ली।
10. मदीहे-विक़ार : लाला पीतमराय, मतला-उल-उलूम, मुरादाबाद।

गुंजन प्रकाशन

मुरादाबाद

द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

❑

1.	गुनगुनी धूप (ग़ज़ल-संग्रह) : कृष्णकुमार 'नाज़'	100/-
2.	मन की सतह पर (गीत-संग्रह) : कृष्णकुमार 'नाज़'	100/-
3.	जीवन के परिदृश्य (नाटक-संग्रह) : कृष्णकुमार 'नाज़'	75/-
4.	सैलाब (कविता-संग्रह) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
5.	उसकी ओर (भक्तिगीत-संग्रह) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
6.	थिरकन (कविता-संग्रह) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
7.	पद्मावत (काव्य) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
8.	शील माहात्म्य (काव्य) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
9.	दर्द (गीत-संग्रह) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
10.	महक (गीत-संग्रह) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
11.	बूँद-बूँद (मुक्तक-संग्रह) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
12.	प्रपात (निबंध व नाटक-संग्रह) : डा. मेघसिंह 'बादल'	75/-
13.	गुरुग्रंथसाहब में सामाजिक चेतना : डा. मेघसिंह 'बादल'	250/-
14.	दर्पण (काव्य-संग्रह) : डा. मेघसिंह 'बादल'	100/-
15.	शंकरानंद भजनावली : शंकरानंद अयोध्यानाथ ब्रह्मचारी, सं. डा. मेघसिंह 'बादल'	25/-
16.	दर्द पतझड़ का (ग़ज़ल-संग्रह) : डा. मीना नक़वी	100/-
17.	संसार हमारा है (ग़ज़ल-संग्रह) : ओंकारसिंह 'ओंकार'	100/-
18.	कसक (ग़ज़ल-संग्रह) : सतीश 'फ़िगार'	150/-
19.	फ़िक्रे-जमील (ग़ज़ल-संग्रह) : सतीश 'फ़िगार'	100/-
20.	एक ख़ास शाम - एक ख़ास सुबह (कविता-संग्रह) : रमाशंकर सिंह	75/-
21.	भीमकथा (काव्य) : डा. बलवीर सिंह	150/-
22.	ज्योतिर्मय जनार्दन : डा. रमेशचंद्र यादव 'कृष्ण'	1100/-
23.	शून्य के मुखौटे (कविता-संग्रह) : आनंद कुमार 'गौरव'	100/-
24.	प्यार की प्यास (काव्य-संग्रह) : उदयप्रकाश सक्सेना 'अस्त'	100/-
25.	दोस्ती की धूप (ग़ज़ल-संग्रह) : शिवराज सिंह 'प्रीतम'	100/-
26.	कैवल्य ज्ञानी भगवान जंभेश्वर जी : बलवीर सिंह	50/-

27. रहगुज़र (ग़ज़ल-संग्रह) : अक़ील नोमानी 100/-
28. युगप्रवर्तक-भारतरत्न डा. भीमराव अम्बेडकर : डा. मेघसिंह 'बादल' 250/-
29. श्वासों के सप्तम् (गीत-ग़ज़ल-संग्रह) : सतीश 'सार्थक' 100/-
30. उपवन (कविता-संग्रह) : शिवराज सिंह 'प्रीतम' 100/-
31. नेह के अंकुर (गीत-ग़ज़ल-कविता-संग्रह) : सतीश 'सार्थक' 150/-
32. प्रेम की सरिता (काव्य-संग्रह) : सतीश 'सार्थक' 100/-
33. सहमत नहीं हूँ (ग़ज़ल-संग्रह) : पारसनाथ बुलचंदानी 100/-
34. सीता-व्यथा (काव्य-संग्रह) : रामपाल सिंह 100/-
35. प्यार के दीप (ग़ज़ल-संग्रह) : ओंकार सिंह 'ओंकार' 100/-
36. युगों की प्रतीक्षा (काव्य-संग्रह) : सतीश 'सार्थक' 125/-
37. जलते हुए सवाल (आज़ाद शेर) : पारसनाथ बुलचंदानी 150/-
38. उगा है फिर नया सूरज (ग़ज़ल-संग्रह) : डा. कृष्णकुमार 'नाज़' 200/-
39. बात बोलेगी (साक्षात्कार-संग्रह) : योगेन्द्र वर्मा 'व्योम' 300/-
40. आहट है गलियारे में (ग़ज़ल-संग्रह) : प्रो. ओम 'राज़' 200/-
41. कुछ मैं भी कह लूँ (काव्य-संग्रह) : अविनाश चंद्र मिश्र 'चंद्र' 200/-
42. मुट्ठीभर ज़िंदगी (कहानी-संग्रह) : रामानुज मिश्र 100/-
43. हिन्दी ग़ज़ल और कृष्णबिहारी 'नूर' : डा. कृष्णकुमार 'नाज़' 595/-
44. भीगे नयन (काव्य-संग्रह) : सतीश 'फ़िगार' 150/-
45. मैं लौटूँगा एक दिन (कविता-संग्रह) : करन सिंह 100/-
46. झरीं नीम की पत्तियाँ (दोहा-गीत-संग्रह) : देवदत्त प्रसून 200/-
47. दर्पणों ने जब कहा (काव्य-संग्रह) : विवेक 'निर्मल' 150/-
48. काश... (ग़ज़ल-संग्रह) : ताहिर 'फ़राज़' 200/-
49. व्याकरण ग़ज़ल का : डा. कृष्णकुमार 'नाज़' 150/-
50. हवा के टुकड़े : गोविन्द 'गुलशन' 150/-
51. समर्पण : अनुराग गौतम 200/-
52. तिश्नगी ही तिश्नगी : आर.एन. सक्सेना 'गुलशन' बरेलवी 150/-
53. रिश्ते बने रहें : योगेन्द्र वर्मा 'व्योम' 200/-
54. कालचक्र : रामपाल सिंह 150/-
55. मुरादाबाद के गै़र मुस्लिम शायर : डा. मो. आसिफ़ हुसैन 200/-

●●

संक्षिप्त-परिचय

नाम : डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन
पिता : श्री ज़ाहिद हुसैन
जन्मतिथि : 19 जुलाई, 1972
शिक्षा : बी.एस-सी., बी.एड.,
एम.ए. (उर्दू), पी-एच.डी.

प्रकाशित पुस्तकें-

1. हनीफ़ कु़रैशी का तआरुफ़ (2002)
2. फ़ाज़िल बरेलवी : हयात और ख़िदमात (2004)
3. आरिफ़ हसन ख़ां : शख़्सियत और ख़िदमात (2013)
4. मुरादाबाद के ग़ैर-मुस्लिम शोअरा (2015)
5. मुरादाबाद के ग़ैर-मुस्लिम शायर (2016-हिंदी में)
6. सदरुल अफ़ाज़िल और फ़न्ने-शायरी (2016)

शीघ्र प्रकाश्य-

1. तज़्किरा शोअरा-ए-मुरादाबाद (उन्नीसवीं सदी तक)
2. मुरादाबाद में नातगोई की रिवायत
3. मज़ामीने-कैफ़ मुरादाबादी
4. क़मर मुरादाबादी की नातिया शायरी
5. सरमाया-ए-ख़ावर (ख़ावर मुरादाबादी का नातिया मजमूआ)
6. ख़वातीने-मुरादाबाद की इल्मी और अदबी ख़िदमात

संपर्क-

टेस्टी डेयरी, दीवान का बाज़ार, मुरादाबाद-244001
मोबाइल : 84105-44252
email : masifh86@gmail.com

डा. मोहम्मद आसिफ़ हुसैन



पिता : श्री ज़ाहिद हुसैन

जन्म : 19 जुलाई, 1972

शिक्षा : बी.एस-सी., बी.एड.,
एम.ए. (उर्दू), पी-एच.डी.

प्रकाशित पुस्तकें-

1. हनीफ़ कुरैशी का तआरुफ़ (2002)
2. फ़ाज़िल बरेलवी : हयात और ख़िदमात (2004)
3. आरिफ़ हसन ख़ां : शख़्सियत और ख़िदमात (2013)
4. मुरादाबाद के ग़ैर-मुस्लिम शोअरा (2015)
5. मुरादाबाद के ग़ैर-मुस्लिम शायर (2016-हिंदी में)
6. सदरुल अफ़ाज़िल और फ़न्ने-शायरी (2016)

शीघ्र प्रकाश्य-

1. तज़्किरा शोअरा-ए-मुरादाबाद (उन्नीसवीं सदी तक)
2. मुरादाबाद में नातगोई की रिवायत
3. मज़ामीने-कैफ़ मुरादाबादी
4. क़मर मुरादाबादी की नातिया शायरी
5. सरमाया-ए-ख़ावर (ख़ावर मुरादाबादी का नातिया मजमूआ)
6. ख़्वातीने-मुरादाबाद की इल्मी और अदबी ख़िदमात

संपर्क-

टेस्टी डेयरी, दीवान का बाज़ार, मुरादाबाद-244001

मोबाइल : 84105-44252

email : masifh86@gmail.com

ISBN : 978-93-80753-33-1

9789380753331

गुंजन प्रकाशन

मुरादाबाद (उ.प्र.)-244001